वर्ष ७, अंक ३

श्रीकृष्णाय नमः

मार्गशीर्ष पूर्णिमा १९८९

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

विषय सूची

सं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश		१
२.	भगवद्भक्त [ले० श्री पूज्य स्वामी मोरे बाबा जी ...		... ३१
३.	ममता और समता [ले० श्रीस्वामी आत्मानन्द जी		३३
४.	किस ओर (कविता) [ले० श्री मदन गोपाल जी सिंहल		... ३८
५.	बहिरंग साधन [ले० श्रीमहात्मा राम		३६
६.	बन्धन मुक्त		४१
७.	प्रेम का अंकुर हृदय में उपजने के लक्षण [ले० भक्तराज श्री ध्रुव प्रसाद ज		५१
८.	सुदामा कृष्ण (कविता) [ले० श्री गिरिधर विष्णु पाण्डेय बिलासपुर		... ५४
९.	भक्त और उपासक [ले० श्री पुरुषोत्तम लाल जी त्रिपाठी		५७
१०.	योग साधन [ले० श्रीस्वामी शिवानन्द जी सरस्वती		... ६८
११.	श्रुति सार		... ७२
१२.	भजन		७५

REG DNo. L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।=)
३.	वेदोपनिषद्		।)
४.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	।)
५.	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	।।।)
६	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,,	=।)
७.	सत्य शब्द संग्रह गुटका	,,	।)
८.	सत्य शब्द संग्रह	,,	।=)
९.	शब्दसंग्रह	,,	=।)
१०.	सारसंग्रह	,,	।)
११.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	।=)
१२	मनुस्मृति सार	,,	
१३.	भक्ति चिन्तामणि	,,	
१४.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१५.	भगवदंक	,,	।।।)
१६.	गवांक	,,	१)
१७.	महात्मांक	,,	१)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहिए।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

सीताजीकी अग्नि-परीक्षा

विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृह्णीष्व मैथिलीम्।
न किञ्चिदभिधातव्या अहमाज्ञापयामि ते॥

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ७ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, कार्तिक पूर्णिमा सं० १९८९ | अंक २ पूर्ण संख्या ७४

वेदोपदेश

योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्य त्वं प्राणेनाप्य यस्व।
आ वयं प्यासिषी मही गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहै धनेन ॥ २० ॥

हे चन्द्रात्मन! जो हम से द्वेष रखता है अथवा जिस से हम द्वेष रखते हैं उसे भी तू जीवन दे। हम सब गाय, बैल घोड़ा, पुत्र पौत्र, पशु, घर एवं धनादि से भरपूर हों ॥ १ ॥

बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानडुत्सु नः।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ॥ २ ॥

हे परमात्मन! आप ही बल के देने वाले हैं हमारे शरीर रथ के घोड़ों में बल वीर्य का संचार करो, हमारे छोटे एवं बड़े सभी जीवन के लिए जीवन बल का दान दो ॥ २ ॥

योनः सुप्तान् जाग्रतो वाभिदासात् तिष्ठतो वा चरतो जातवेदः।

वैश्वानरेण सयुजा सजोषा स्तान प्रतीचो निर्दह जातवेदः ॥ ३ ॥

हे भगवन्! जो हम सोए हुओं को, या जगते हुओं को, बैठे हुओं को अथवा चलते फिरतों को दास बनाता है। हे भगवन् प्रेम रखने वाले साथियों की सहायता से उन को नष्ट कर ॥ ३ ॥

यामृषयो मन्त्रकृतो मनीषिण अन्वैच्छन्देवास्तपसा श्रमेण ।
तान्देवीं वाचं हविषा यजामहे सा नो दधातु सुकृतस्य लोके ॥ ४ ॥

मन्त्रों के बनाने वाले दिव्य गुण मनस्वी ऋषियों ने जिस देवी वाणी को अत्यन्त परिश्रम और तप से प्राप्त किया उसी को हम हवि से अर्चित करते हैं। वह हम को सुकृत (स्वर्ग) लोक में स्थापित करे ॥ ४ ॥

वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे वाचं गन्धर्वाः पितरो मनुष्याः ।
वाचीमां विश्वा भुवनान्यर्पिता सा नो हवं जुषतामिन्द्र पत्नी ॥ ५ ॥

विश्व में देवगण अपना जीवन वाणी से स्थिर रखते हैं गन्धर्व, पितर और मनुष्य भी वाणी के द्वारा ही अपना काम चलाते हैं यह चतुर्दश भुवन भी वाणी में ही अधिष्ठित हैं। ईश्वर की पत्नी वह वाणी हमारी प्रार्थना को स्वीकृत करे ॥ ५ ॥

भगवद्भक्ति

[ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी]

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोक महेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां श्रीकृष्णं प्रणमाम्यहम् ॥

सौहार्द निष्ठा ।

संसाराम-महाराज! कल आपने वात्सल्य-निष्ठा और उस निष्ठा के भक्तों की कथायें सुनाई थी, आज कृपा करके सौहार्दनिष्ठा और उसके भक्तों की कथा सुनाइये। हे भगवन्! मेरा निश्चय है कि जितनी जल्दी भगवद्भक्तों की कथायें सुनने से चित्त निर्मल होता है, उतनी जल्दी अन्य साधनों से नहीं होता जिनकी कथायें सुनने से अन्तःकरण के दोष सहज ही में निर्मल हो जाते हैं, और जीव संसार के तापों से छूट कर आनन्द स्वरूप भगवत् के परायण हो जाता है, उनकी कथा सुनने को भला कौन

सा चतुर पुरुष उत्साह नहीं करेगा ? सब ही करेंगे। ज्यों २ आपके मुख कमल से मैं भक्तों की कथायें सुनता हूं त्यों २ मेरा उत्साह बढ़ता जाता है, इसलिये आशा है कि आप मेरे उत्साह को उत्तेजित करेंगे और मुझे भक्त कथामृत रस पिलायेंगे।

मस्तराम-(प्रसन्न होकर)-भाई भगवान् और भगवान् के भक्तों की कथायें श्रोता और वक्ता दोनों को पवित्र करने वाली हैं। सनकादिक ब्रह्म निष्ठ ज्ञानी भी समाधि का सुख छोड़ कर जिन कथाओं को सुनते और सुनाते हैं, उन कथाओं को तू सुनने का उत्साह करता है, तो मैं भी उत्साह के साथ सुनाने को तैयार हूं, ध्यान देकर सुनः-

हे मंसाराम ! संसार में जितने सम्बन्ध हैं सब प्रकार के सम्बन्धों से उत्पन्न होते हैं, १ शेष शेषी, २ अंश अंशी, ३ शरीर शरीरी, ४ पति पत्नी, ५ पूज्य पूजक, ६ सेव्य सेवक, ७ रक्ष्य रक्षक, ८ जनक जन्य, ९ गुरु शिष्य। इन सम्बन्धों पर सम्यक् विचार किया जाय, तो ये सब सम्बन्ध ईश्वर और जीव पर समाप्त होते हैं। यह बात विस्तार से सेवा निष्ठा में शेष शेषी भाव के वर्णन में कह आया हूं, संक्षेप से यहां भी कहता हूं। अंशी, पति, पूज्य, सेव्य, रक्षक, पिता, गुरु, अथवा किसी सम्बन्ध वाला जो सब में बड़ा, पुराना, और आगे भी सदा रहने वाला प्रथम था और उस सम्बन्ध की रीति का जानने वाला और निर्वाह करने वाला यदि ढूंढा जाय, तो भगवत् से अधिक और अच्छा कोई नहीं है, इसी लिये अंशी, रक्षक, पति इत्यादि भगवत् के नाम विष्णु सहस्र नाम और अन्य सहस्र नामों और स्तोत्रों में लिखे गये हैं। इसी प्रकार पूजा करने वाला, सेवा करने वाला, और रक्षा चाहने वाला इत्यादि यदि ढूंढा जाय तो जीव पर ये विशेषण युक्त होते हैं, क्योंकि उन सम्बन्धों में जीव से अच्छा कोई नहीं है। उस में भी मनुष्य शरीर तो ईश्वर और जीव के मुख्य सम्बन्ध वाला है। यह सम्बन्ध अनादि और पुराना है अर्थात् उसी दिन से है कि जिस दिन से इस जीव ने ईश्वर के अंश से प्रकट होकर जीव नाम धारण किया है और यह सम्बन्ध आगे भी बना रहेगा, तो जब ईश्वर और जीव का ऐसा पुराना और दृढ़ सबन्ध है, तो अत्यन्त उचित और योग्य है कि जो संसारी सम्बन्ध हैं, वे भी भगवत् के साथ ही लगाये जांय। इस विषय में भगवत् ने कहा है कि जो मुझ को अपना सम्बन्धी जान कर मेरा सेवन करता है, वह मुझ को प्राप्त होता है। भागवत और महाभारत के बहुत से वचन उस बात के निश्चय कराने वाले हैं, और गीता जी एकादश और शान्ति पर्व महाभारत में बारम्बार यह वार्ता आयी है कि जो जिस भाव से भगवत् का आराधन करता है, उसी भाव से भगवत् उस पर प्रसन्न होते हैं और पुराण और भक्तमाल की हजारों कथायें इस बात की साक्षी हैं। नहीं तो कहां वह पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन, कि जिसको वेद नेति नेति कहते और जिसके स्वरूप, ज्ञान और महिमा के वर्णन करने में ब्रह्मा, शिव, शेष और शारदा के ज्ञान का दीपक ठंडा हो जाता है और कहां राम, कृष्ण, नृसिंह, वामन इत्यादि अवतार धारण करके सब भक्तों के भाव और चाह को पूरण करना। तात्पर्य इस कहने का यह है कि संसार में सम्बन्ध का धागा ऐसा बराबर है कि उसके अवलम्ब से सब को अपने सम्बन्धियों में स्नेह और प्रेम होता है। इसी प्रकार यदि भगवत् में सौहार्दभाव के अवलम्ब से मन लगाया जाय, तो भगवत् के मिलने में क्या संदेह है। कुछ भी संदेह नहीं है, वरु अवश्य ही शीघ्र मिलेंगे।

मंसाराम-महाराज ! भगवत् को भाई, बाप,

दामाद, भतीजा अथवा देवर, जेठ इत्यादि संबन्धी कहना कहाँ योग्य है और यह बात बुद्धि में कैसे आसकी है।

मस्तराम-भाई ! यह बात अंगीकार की जाय, तो दास्य, शृंगार, वात्सल्य इत्यादि सब उपासनायें त्याज्य हो जायेंगी क्योंकि जिन प्रमाणों से सम्बन्ध त्याज्य होगा, वे ही प्रमाण दास्य आदि निष्ठाओं के लोप करने में समर्थ हैं कि भगवत् स्वामी, मित्र, पिता, पुत्र आदि नहीं हो सके और जिन वचनों के प्रमाण से दास्य आदि निष्ठायें अंगीकार योग्य हैं. उन्हीं प्रमाणों से यह सौहार्द निष्ठा भी सत्य और युक्त है क्योंकि जैस शास्त्रों की आज्ञा उन निष्ठाओं के लिये है, वैसी ही इस निष्ठा के लिये भी है। युधिष्ठिर, कुन्ती, द्रौपदी, उग्रसेन, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत, बलदेव, लव, कुश, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और जनक आदि हजारों भक्तों की कथा इस में प्रमाण रूप है और एक यह बात भी सब शास्त्रों में लिखी है कि सब सम्बन्धियों को भगवत् के सम्बन्ध से मानना चाहिये, अर्थात् बेटे, पोते, भाई, भतीजे और दूसरों में से किसी को किंकर, किसी को जल भरने वाला, किसी को रसोइया, किसी को चौका देने वाला और किसी को सेवा करने वाला जाने, संसारी सम्बन्धों को मुख्य न समझे और उनमें से यदि कोई भगवत् विमुख हो, तो उसका त्याग उचित है, क्योंकि प्रह्लाद ने पिता को, विभीषण ने भाई को, भरत जी ने माता को, राजा बलि ने गुरु को और गोपियों ने पतियों को त्याग दिया था और उस त्याग करने में किसी की कोई हानि नहीं हुई, वरु उलटी उनकी कीर्ति प्रसिद्ध हुई, उनका नाम जगत् को आनन्द और मंगल देता है। जब दूसरे सम्बन्धियों को भगवत् के सम्बन्ध से मानने को लिखा है, तो उचित और आवश्यक हुआ कि अपना संबन्ध भी स्थिर करले। यह सम्बन्ध ऐसा आरोपण करना योग्य है कि जिस में मन की रुचि हो और जिससे गहरी प्रीति हो।

हे मंसाराम ! सब शास्त्रों का मुख्य अभिप्राय यह है कि भगवत् का किसी प्रकार किसी रूप में किसी भांति आराधन हो, अद्वैतता और ईश्वरता भगवत् की निश्चय समझ कर दृढ़ विश्वास कर लेना चाहिये। यह कदापि नहीं हो सका कि भगवत् न मिलें अवश्य ही भगवत् की प्राप्ति होती है। जब तक अद्वैतता और ईश्वरता का ज्ञान और विश्वास नहीं होता, तब तक कुछ प्राप्त नहीं होता, जो कुछ प्राप्त होता है, अद्वैतता के ज्ञान और विश्वास से ही प्राप्त होता है।

हे मंसाराम ! इस सौहार्द निष्ठा की महिमा और बड़ाई कौन कह सका है ? कोई नहीं कह सका। इस निष्ठा का ऐसा प्रताप है कि अपने आप भगवत् में मन लग जाता है। इस निष्ठा का ऐसा प्रताप क्यों न हो, होना ही चाहिये क्योंकि पूर्ण ब्रह्म, अन्तर्यामी और व्यापक भी साक्षात् होकर सब प्रकार से इस निष्ठा के उपासकों का मनभाया और चित चाहा करता है, करता रहा है और आगे करता रहेगा। ऐसा प्रताप होने का कारण यह है कि अन्य निष्ठायें तो ऐसी प्रसिद्ध हैं कि सब कोई अपने आपको दास और भगवत् का उत्पन्न किया हुआ कह सका है, चाहे वह अपने मतमतान्तर को जानता हो या न जानता हो। और इस निष्ठा में तो उसी का मन लगेगा, जो भगवत् के सिद्धान्त, शास्त्र ईश्वर की ईश्वरता और चरित्रों का जानने वाला होगा। ऐसा होने से जब सब शास्त्रों के अभिप्राय को जानने के पीछे भगवत् में मन लगेगा, तो भगवत् बहुत शीघ्र मिल सके हैं। इस निष्ठा के

उपासकों को उचित है कि जिस सम्बन्ध से भगवत् की आराधना करें उस संबन्ध को, जैसे माई, दामाद अथवा भतीजे के साथ निभाते हैं, उसी प्रकार भगवत् के साथ दृढ़ निश्वास और सच्ची भावना से पक्की दशा को पहुंचा दें और जिस संबंध की जो रीति है, वह सब भगवत् के साथ ऐसी निबाहें कि किंचित् भी कोई बात शेष न रहे।

थोड़े दिन हुए कि जनकपुर के रहने वाले स्वामी रामप्रसाद श्रीरघुनन्दन महाराज को अपना दामाद मानते थे। जब वे अयोध्या जी में आये तो उन्होंने अयोध्या जी के देश का पानी तक पीना छोड़दिया। जब श्रीरघुनन्दन महाराज के दर्शन को गये तो उनके भाव को पूर्ण करने को और भक्ति के प्रताप को प्रकट करने को भगवत् की मूर्ति सिंहासन से उठकर उनकी अगवानी को आयी और जो रीति, मर्याद राजा जनक के लिये होनी उचित थी, वह सब उनके साथ हुई। यह बात विख्यात है और स्वामी रामप्रसाद के सेवक अब तक उस देश में विद्यमान हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि निष्ठा में पक्कता हो, तो तुरन्त ही बेड़ा पार है।

एक वैष्णव रघुनन्दन स्वामी को अपना बहनोई जानते थे। उनकी कोई घड़ी भजन बिना नहीं जाती थी। जिस घड़ी वे अपनी निष्ठा और अपने विश्वास की वार्ता किया करते थे, तो सुनने वाले प्रेम में मग्न हो जाया करते थे। उनकी दशा क्या कही जाय? कही नहीं जा सकती। व्रज में बरसाना लाडिली जी का मैका है, वहां की व्रजवासिनियों की बोलचाल जो यात्रियों के साथ होती है, उस समाज में जो दशा भक्तजनों की होती है, वह सब किसी को मिले। तात्पर्य यह है कि इस निष्ठा वालों की बोलचाल सुन कर सुनने वालों को बरबस भगवत् में स्नेह और प्रेम हो जाता है। उनके प्रेम का वर्णन किस प्रकार किया जाय? एक भगवद्भक्त भगवत् से इस प्रकार प्रार्थना करता है:—

हे श्रीकृष्ण स्वामी! हे दीनवत्सल! हे पतितपावन! क्या कोई ऐसी शुभ घड़ी मेरे लिये भी आवेगी कि जितने इस संसार में नाते, और मित्र भाव हैं, वे सब आपके चरणकमलों में विचारा करूंगा और क्या कभी वह दिन भी आवेगा कि दूसरे सब अवलम्ब और विश्वास को छोड़ कर केवल आपके चरणों का आसरा और विश्वास करूंगा, जो शिव, ब्रह्मा आदि परम योगियों के इष्ट देव हैं और नारद, प्रह्लाद, सनकादिक भक्तों के स्वामी हैं, जिनका ध्यान परम पद का देने वाला है और संसार समुद्र से पार होने को हम सब के लिये जहाज है। अपनी ओर देखता हूं, तब तो करोड़ों वर्ष तक मेरा मनोरथ पूर्ण होने की आशा नहीं है, हां! यदि आपकी कृपा दृष्टि हो गयी, तो कुछ दुर्लभ नहीं है, तुरन्त ही बेड़ा पार है।

कथा राजा जनक की।

जनक महाराज की महिमा शास्त्रों में वर्णन की है। इनका ज्ञान सूर्य के सदृश ऐसा प्रकाशित हुआ कि उस ज्ञान ने शुकदेव जी इत्यादि ऋषीश्वर ज्ञानवान और वैराग्यवानों के मन को कमल के समान प्रफुल्लित कर दिया और आवागमन के अन्धकार को दूर कर दिया। सर्व ब्रह्मांडेश्वरों की माता और श्रीरघुनन्दन स्वामी की परम प्रिया सीता महारानी ने जिन जनक महाराज के घर अवतार धारण करके परम पवित्र चरित्र किये, ऐसे महाराज की महिमा कौन वर्णन कर सका है? जब रघुनन्दन महाराज जानकी जी के स्वयंवर में विश्वामित्र जी के साथ जनकपुर में गये और राजा

जनक मिलने को आये तब इन्हीं ही जनक महाराज ने श्रीरघुनन्दन को देखा, उसी घड़ी ये ज्ञान वैराग्य को विदा करके परम मनोहर और अनूप रूप माधुरी के प्रेम में विह्वल हो गये और जब अपनी प्रतिज्ञा पर इनका चित्त गया कि जो कोई शिवजी का धनुष तोड़ेगा, उसको ही सीता मिलेगी, तो अति विकल हुए, कभी तो अपनी बुद्धि पर शोक करते थे कि क्यों ऐसी प्रतिज्ञा की और कभी कर्मों से उदास होकर कहते थे कि तुमने प्रतिज्ञा किस लिये कराई कभी देवताओं का ध्यान करके मन में यह प्रार्थना करते थे कि यह श्यामसुन्दर वर सीता को मिले और कभी अपने ज्ञान, वैराग्य और कर्मों का फल अपना मनोरथ पूर्ण होने को मन में संकल्प करते थे। जब किसी प्रकार मन की विकलता न मिटी, तो रघुनन्दन महाराज के चरणकमलों की इन्होंने शरण ली और अपने मनोरथ पूर्ण होने का दृढ़ विश्वास कर लिया।

जब श्रीरघुनन्दन महाराज ने जनक महाराज की भक्ति और भाव देखा और जनकपुर वासियों की चाहना राजा जनक से भी सौगुणा देखी कि रघुनन्दन महाराज के हाथ से धनुष टूटे और जानकी महारानी का वह अपार प्रेम पाया कि सब ब्रह्मांडों का प्रेम जिनके प्रेम के करोड़वें भाग की छाया है, तो धनुष को घुनी हुई लकड़ी के समान तोड़ डाला। जब राज सभा में सीता महारानी श्रीरघुनन्दन महाराज को जयमाल पहिनाने लगीं, उस समय जनक महाराज ने सीता और रघुनन्दन की अनूप छवि जो देखी, तो वे अपने भाग्य की बड़ाई करते हुए भगवत् कृपा के समुद्र में डुबकी लगा कर बेसुधि हो गये और जिस घड़ी विवाह और भांवरि होने के पीछे सीता जी और रघुनन्दन महाराज एक सिंहासन पर विराजमान हुए उस समय की शोभा और दशा का वर्णन किसी से नहीं हो सका, ब्रह्मानन्द का परमानन्द भी उस आनन्द के सम्मुख फीका था, राजा जनक की इस समय यह दशा हुई कि अंग अंग से थकित होकर आँखों से एक टक देखते रह गये, सच तो यों है कि इनका विदेह नाम उसी समय हुआ। सुनयना रानी का प्रेम अलग रहा, जनकपुरवासियों के प्रेम की दशा कहाँ जाय, तो अगणित शेष, शारदा भी नहीं कह सके, तो अन्य कौन कह सका है? रनिवास की प्रति, बोल चाल और हंसी इत्यादि, वह ऐसे आनन्द का देने वाला रस है कि जिसको पान करके सुधि बुधि सब बिसर जाती है, तो वर्णन कौन करे, गूंगे का गुण है कि मन ही मन स्वाद आता है, कहा नहीं जाता। विश्वामित्र जी को राजा जनक के प्रेम और भाव का वृत्तान्त धनुष टूटने पर खुल गया था, कुछ २ विवाह होने पर खुल गया था, परन्तु यथार्थ भाव उसी घड़ी मालूम हुआ कि जब ये जानकी महारानी को पालकी पर सवार कराके श्रीदशरथनन्दन महाराज से विदा हुए।

दो-जनक नन्दिनी ईश्वरी, रघुनन्दन विश्वेश।
देखि आंख से ज्ञान सब, भूल गये मिथिलेश॥

कथा वृषभानु और कीर्तिजी की।

वृषभानु महाराज और उनकी पत्नी कीर्तिदा महारानी की महिमा और भक्ति का मुख से कैसे वर्णन हो सका है, जिनके घर श्री राधिका महारानी सर्वेश्वरी श्रीकृष्ण की प्राणप्रिया ने अवतार धारण करके तीनों लोकों को पवित्र किया। रसिक लोगों को विदित है कि श्री राधिका महारानी में उपासक लोग दो प्रकार के भाव रखते हैं। निम्बार्क

संप्रदाय वालों का तो यह निश्चय है कि राधिका महारानी और नन्दकिशोर महाराज का विवाह हुआ और विष्णु स्वामी संप्रदाय वालो का भी यह ही निश्चय है और उस भाव का नाम स्वकीया है। माध्व संप्रदाय और हित हरिवंश संप्रदाय वाले परकीया भाव का निश्चय रखते हैं और भाव भी विलक्षण रखते हैं अर्थात् विवाह नहीं हुआ, पिया प्रियतम महाराज में अन्योन्य प्रीति का होना वर्णन करते हैं, और दोनों स्वरूपों को एक जानते हैं। पुराणादिक के वचनों के प्रमाण से दोनों भावों में से एक भाव को यदि दृढ़ किया जाय, तो दूसरे की अरुचि होगी, इसलिये इसके निर्णय का कुछ प्रयोजन न समझ कर यह ही निश्चय हुआ कि दोनों भावों से वृषभानु महाराज श्रीव्रजचन्द्र महाराज के श्वशुर और कीर्तिदा महारानी सासु हैं। एक यह बात भी जानने की है कि अब तक बरसाने की सब जाति नन्दगांव वालों को अपनी बेटी विवाह में देते हैं और नन्दगांव की बेटी नहीं लेते। सिवाय इसके वल्लभाचार्य के कुल में वात्सल्यनिष्ठा है अर्थात् पुत्रभाव रखते हैं, इसका वर्णन वल्लभाचार्य की कथा और वात्सल्यनिष्ठा में हो चुका है। उनकी रीति है कि व्रजयात्रा के समय जब किसी मन्दिर में दर्शन करने को जाते हैं, तो आप ही मन्दिर के भीतर जाकर पूजा इत्यादि किया करते हैं और जब बरसाने में आते हैं और लड़िली जी के दर्शनों को जाते हैं, तो बरसाने वाले उनको मन्दिर के भीतर नहीं जाने देते। भाव इसका यह है कि समधी को महल में कैसे जाने दें, बाप के घर में कोई लड़की अपने सुसराल वालों के सामने नहीं जाती, ऐसे २ विमलभाव व्रजवासियों के हैं, रसिक लोग विचार करके अपने २ भाव और विश्वास के अनुसार वृषभानु और कीर्तिदा जी में भाव रक्खें, क्योंकि सब प्रकार से भक्ति और भाव परमानन्द और प्रेम की खानि है। वृषभानु और कीर्तिदा जी का यश चन्द्रमा से भी अति निर्मल है, जो इस यश की शरणलेता है, संसार के ताप से छूट जाता है।

दो०—राधा शक्ति अनादि अज, कृष्ण विश्वकर्तार।
जिन दम्पति से जन्म लें, उनकी कीर्ति अपार॥

कथा राजा उग्रसेन की।

उग्रसेन जी कंस के बाप और श्रीकृष्ण महाराज के नाना थे और उनकी भक्ति का भाव ऐसा अलौकिक हुआ है कि भगवद्भक्ति का उत्पन्न करने वाला है। यह श्रीकृष्ण महाराज को पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन जानते थे और अपना दौहित्र जान कर वैसा ही प्रेम निबाहते थे। भगवत् ने कंसादिक उनके आठ बेटों को मारा परन्तु भगवत् दर्शन का सुख इन्होंने ऐसा माना कि उनके वध का दुःख उनके निकट कभी नहीं आया। भगवत् उस भक्ति और भाव के अधीन होकर इनके ऐसे वशीभूत हुए कि ब्रह्मा, शिव, सूर्य, चन्द्रमा, यम, काल और वरुण इत्यादि जिनकी माया से भयभीत होकर सदा उनकी प्रसन्नता की आशा करते हैं, उस अपनी ईश्वरता का कुछ विचार न करके भगवत् ने अपने श्रीहस्त से छत्र और चंवर लेकर सेवकों के सदृश सेवा की। सच है कि भक्ति ही भगवत् को वशीभूत करती है, गुण नहीं, क्योंकि सुदामा के पास कौनसा धन था, गजराज को कौनसी विद्या थी, उग्रसेन को कौन पौरुष और बल था, कुब्जा को कौन सी सुन्दरता थी, व्याध का कौनसा पुण्य और आचार था, विदुर जी का कौन सा उत्तम कुल था, और ध्रुव का क्या वयक्रम था? भक्ति ही सार पदार्थ है।

दो०—भगवत् रीझत भक्ति से, नहिं देखत गुण अन्य।
भक्ति करैं ते ऊंचि उर, भोला! वे नर धन्य॥

ममता और समता

[ले० श्री० स्वामी आत्मानन्द जी]

गतांक से आगे

भ० ग त्याग करके झट समझ गया भाई समझ का ही तो फेर है वास्तव में तो बना बनाया शेर है।

यह बात तो अटपटी, झटपट लखै न कोय।
जो मन की खटपट तजै, चटपट दर्शन होय॥
चाह चमारी चूहरी, अरु नीचन की नीच।
तू तो पूर्णब्रह्म है, चाह न होती बीच॥

समझलो समझाते हैं ठीक २ यदि कोई न समझेगा तो बनेगा बार बार माता के उदर का कीट। ये सब आपत्ति ममता से ही उत्पन्न होती हैं अगर माता के उदर में उलटे टंगने की जिज्ञासा हो तो मत मानो, और यदि यह जिज्ञासा न हो तो " सत्संग करहु मन लाई।"

पाठको यही जीव रूपी धीमर, है बुद्धि रूपी स्त्री है पांच ज्ञानेन्द्रिय रूप ५ पुत्र हैं, पांच कर्मेंद्रिय ५ पुत्री हैं। स्वयं प्रकाश राजा रूपी ईश्वर है। जब ईश्वर को प्रार्थना जीवने की तब ईश्वर ने निर्हेतु दयालुता करके चन्दन बगिया रूपी मनुष्य शरीर दिया और उसने वायदा किया कि तेरे को (ईश्वर) नहीं भूलूंगा। यहां इन्द्रिय रूपी सन्तान के लालन पालन में चन्दन बगिया रूपी शरीर को कोयले रूपी अशुभ कर्मों में, संतान रूपी इन्द्रियों की सहायता से उन्हीं के पालन में व्यतीत किया। जब अन्त समय आया तब फिर सोचा और राजा रूपी ईश्वर की प्रार्थना की। ईश्वर की आज्ञानुसार पंसारी (पंचसारी) रूपी सद्गुरु के पास पहुंचा तब पंच तत्व के सार को जानने वाले सद्गुरु ने पंच जनित विकार को समझाया अभ्यास दृढ़ किया उसके बल से अन्तःकरण शुद्ध होने से झट समझ गया। जब धिक्कारमान संतान रूपी इन्द्रियों को काबू में कर शमदमादि संपन्न हो राजा के कर्मचारी शुभेच्छादिकों की सहायता से अपने आदि स्वरूप परमात्मा से मिला यानी एकी भाव स्थित हुआ।

शा०-श्री महाराज धन्य है आपको और आप की वाणी को मेरे भीतर जाकर निशाना लगा कर बैठ गई अब वापिस नहीं होवेगी मेरा यही निश्चय है। समझ गया ज्ञान भया अब इस चूहरी के काबू में नहीं आऊंगा यह ममता ही अत्यन्त नीच से नीचता को प्राप्त कराती है अपने स्वरूप ज्ञान को भूल इन्द्रियों की लोलुपता से पालनादि में समय व्यतीत करना यही ममता है। अब श्री महाराज समता को स्वरूप भी समझाइयेगा आप के समान मेरा हित कर त्रिलोकी में कोई नहीं है मेरा आवरण दूर कर दिया।

शा०-दृष्टांत में समता को भी समझाया पर अन्तःकरण अत्यंत शुद्ध न होने से समझ में नहीं आया है समता की प्राप्ति तभी होगी जब संसार के किंचित् पदार्थ की भी चाहना नहीं हो यानी तुच्छता हो जावे। किसी विवेचना तत्वदर्शी ने कहा है "रीझत राम सनेह निसोते" फिर भरत जी कहते हैं "को जगमंद मलिन मन मोते" इस कारणसे हे शिष्य! मलिन मति त्याग कुछ काल अभ्यास कर साधन सम्पन्न हो समय पाकर समता का स्वरूप समझाऊंगा। ममता में अत्यन्त दुःख है यह तेरी समझ में आ ही गया है समता निरतिशय सुखवाली है।

शा०-बहुत काल गुरु जी की सेवा विधिवत् साधन करता रहा जब अतः करण शुद्ध हुआ तो

जो शास्त्र पढ़े थे अब तो वे भी अर्थ देने लगे और अपने आपही नित्य मगन रहने लगा।

शां०–क्या तेरी सब बात पहिले से बदल गई न इतना वाचाल रहा न गमगीन पना रहा क्या हो गया जब देखते हैं प्रसन्न ही देखते हैं मुसकरा कर पूछा।

पाठको गुरु के मुसकराने में ही अत्यन्त रहस्य है लेखनी द्वारा प्रकाशित होना अशक्य है बस समझलो यही गुरु की सैन बैन है। जाने सो जाने मूर्ख बार बार आने सिर धुनै पछितानै जो सैन को नहीं जाने।

ज्ञा०–गुरुजी की मुसकराहट को समझ कुछ काल समाधिस्त हो फिर मन को बाहर कर गुरुजी से सविनय हाथ जोड़ बोला मुसकरा कर ही कथन करता भया। आपकी मेरे ऊपर असीम कृपा हुई है जिह्वा से क्या वर्णन करूं करूं तो हो नहीं सक्ता अब मेरे को समता का स्वरूप समझाइये अब मेरा अन्तःकरण शुद्ध और समझने योग्य हुआ है।

शां०–अब तेरे को समता का स्वरूप समझाऊंगा अपना साक्षी अपना आप नहीं बनता तब तक ब्रह्मा की भी सामर्थ समझाने की नहीं। तेरे वचन से ज्ञात होता है तेरे में शक्ति समझने की पैदा हुई है पैदा कहना भी नहीं बनता वह तो थी ही पर आवरण ने ढकी हुई थी सो आवरण दूर हुआ है। अबभी कुछ काल सत्संग कर आपही समझ जावेगा। सत्संग ही चेतन है और सब क्रिया जड़ हैं। तू वीर है तू धन्य है तैंने करने का काम किया है मनुष्य शरीर सार्थक किया है।

ज्ञा०–श्रीमहाराज जो आपकी आज्ञा शिरोधार्य है

शां०– कुछ समय बाद ज्ञान शंकर को बुला कर समझाने लगे ममता (विषमता) तो लौकिक में ही किसी को प्रिय नहीं है कोई अपने घर में विषमता से यानी किसी से कुछ और किसी के साथ कुछ वर्ताव करे उससे उसके (कुटम्बी) राजी नहीं होते। जैसे कोई एक बाबा जिसकी बहुत संतान है किसी पुत्र वधू को कुछ अच्छी और किसी पतोहू को उससे कम कीमत की चीज देवे तो निंदा का पात्र होता है और दोषारोपण होता है और सम दृष्टि से सिर्फ देखे हो, देवे लेवे कुछ भी नहीं तो भी स्तुति का पात्र होता है यह बात सब के अनुभव सिद्ध है फिर परमार्थ तो बहुत सच्चा पवित्र है। इसमें विषमता पग कैसे रख सकी है लोक में देखते हो विषमता ही सिर फुड़वाती है, भाई से भाई भी रार करता है, स्त्री पति का दिल फटवाती है, पिता पुत्र का सिर फुड़वाता है, माता पुत्र को जुदा कराती है। जब लोक में यह हाल है तो बताइये परमार्थ में इसकी दाल कैसे गलेगी। परमार्थ तो सर्व एक रूप है " यह सब एक एक ही होई। ताके मन में निश्चय ऐसी जीवन मुक्ती सोई" सावधान हो समता का स्वरूप समझाता हूं। समता इष्ट यानी अनुकूल वस्तु के प्राप्त हुये तथा अनिष्ट यानी प्रतिकूल वस्तु के प्राप्त हुये जाके चित्त की रागद्वेषादिकों से रहित अवस्था है ताको नाम समता है जैसे रेल की पटरी कितना ही वजन ऊपर जाने से सम रहती है ऐसी जिसके अन्तःकरण की स्थिति किसी लौकिक पारलौकिक से खिंचती नहीं वही समता है। जैसे कोई कहे आज आकाश के वर्गाचे में से यह फूल लाया हूं तिसको देख आश्चर्य को प्राप्त न हो वही समता है।

ज्ञा०–हे भगवन्! ऐसी स्थिति किस की होती है और कब होती है और इससे क्या फल होता है।

शां०–जो विवेक वैराग्यादि से संपन्न होता है उसी को समता की प्राप्ति होती है। गुरु द्वारा

श्रवण मननादि युक्त महावाक्य द्वारा स्वरूप का बोध होता है बोध होने के पश्चात् अपने आप ही ममता विदा हो जाती है। जहां जिसका सत्कार होता है वहां ही जाता है यह नियम है वहाँ उसकी रीझ बूझ ही नहीं रही फिर बिचारी कैसे ठहरे और कोई ग्राहक न हो तो दरवाजा फिर भी लौट कर झांके परन्तु उसके ग्राहक लोग मरे पड़े हैं क्यों कर लौट कर आवे और वहां भी उसको एकान्त नहीं जो उसको न्यौता देने आवे। फिर शेष में रह गई समता सोती उसके घर पड़ी रहती है। समता ही बोध को दृढ़ कराती है, जीवन मुक्ति का विलक्षण सुख भुगाती है. निजानन्द नित्यानन्द में मग्न विद्वान विदेह के रूप को प्राप्त होता है हे शिष्य! तेरे तीनों प्रश्नों का उत्तर दिया अब एक दृष्टांत से स्पष्ट करते हैं सो चित्त लगा कर सुनः-

चेतनसिंह नाम का राजा अपनी स्वतंत्रता से अपने राज्य में सुख चैन से वास करता था। एक दिन एक चोर किसी मन्दिर से घण्टा चुरा कर जंगल में आ छिपा दैवयोग से हिंसक जानवर ने उसे मार खाया। घण्टे का पड़ा हुआ देख जंगल के बन्दर उस घण्टे को उठा ले गये बन्दर मट खट तो होते ही हैं उसको बजाने लगे अपनी २ बारी से बहुत होने के कारण घण्टे की आवाज दिन रात बजने लगी। इधर जंगल के जाने वालों को भय हुआ और शहर में चर्चा होते २ राजा को भी खबर मिली औ पंडित, ज्योतिषियों, स्यानों को इकट्ठा किया गया। सबों ने मिलकर निश्चय किया कि घण्टाकरण नामी भूत है। फिर क्या था अनेक तरह से उपाय होने लगे, जप तप नियम मंत्र यंत्रादि बहुत कराये पर घण्टाकरण टस से मस भी न हुये और घण्टाकरण का विदा होना बहुत दुस्साध्य होगया। राजा की आमदनी बन्द हो गई तब तो राजा बहुत शोकातुर हुआ, राजा धैर्य्य धारण कर विचार करने लगा। एक महात्मा कुछ दूरी पर निवास करते थे राजा वहां गया जब किसी प्रकार अत्यन्त दुःख प्राप्त होता है तब सन्त महात्माओं की याद आती है कि अमुक स्थान पर चलें अमुक महात्मा से मिलो शोक की निवृत्ति होवेगी। यह तो सच ही है कि सन्त के मिलने को बराबर सुख नहीं है तुलसी दास जी ने भी कहा है। "सन्त मिलन सम सुख कछु नाहीं" ठीक ही है राजा महात्मा के पास जाकर सविनय पूर्वक दण्डवत् कर बैठ गया। अर्थी की दण्डवत् तो प्रसिद्ध ही है ऐसी दण्डवत् कौन कर सक्ता है इसको ही बिलट्या दण्डवत् भी कहते हैं।

सन्त-कौन हो, कहां से आये हो, शोकातुर किस कारण से हुये हो? राजाने अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया सन्त सुन कर बड़े जोर से हंसने लगे।

राजा-(मन ही मन में) मैं तो दुःख से दुःखी हूं सन्त जी को प्रसन्नता है।

सन्त राजा के मन का हाल जान गये फिर राजा से पूछने लगे तैंने कुछ उपाय नहीं कराया?

राजा-जी महाराज बड़े बड़े नामी पण्डित काजी मुफ्तियों को बड़ी २ दूर से बुलाया बड़ा द्रव्य भी खर्च किया, यज्ञादि सभी कराये हैं पर घण्टाकरण नहीं भागे हैं।

सन्त-धैर्य धारण कर घण्टाकरण को हम भगायेंगे।

राजा-महाराज कब भगाइयेगा? संत चल अभी चलते हैं यह कह कर राजा के साथ हो लिये और जंगल के किनारे जा खड़े हुये जहां घण्टे की आवाज आती थी। सन्त जी ने भी सुना सुन कर समझ लिया घण्टे की आवाज है अब यह निर्णय

करना चाहिये किस तरह आवाज होती है। सन्त जी भीतर घुस गये देखते हैं कि बन्दर अपनी २ बारी से घण्टा हिलाते हैं देख कर बाहर आये और राजा से कहा 'दो गाड़ी चना मंगवाइयेगा" आज्ञा पाते ही चने आगये। चने भीतर जाकर उस वादिये गये भूतसदृचनों से चिपट गये सन्त ने घण्टे को उठा लिया और लाकर राजा को दे दिया। आवाज बन्द होगई, राजा पैरों में गिर कर प्रशंसा करने लगा, भेंट देने लगा। तब महात्मा जी ने सब वृत्तांत सुनाया मैंने क्या किया है जिसकी तुम प्रशंसा और भेंट देते हो। अगर कोई शंका करे घण्टाकरण भगाया, किया कैसे नहीं, उसका समाधान यह है कि महात्माओं का स्वभाव ही है परोपकार करना और उसकी एवज में कोई भौतिक पदार्थ हो भी नहीं सक्ता सन्त निस्पृही होते हैं कीमत में कुछ नहीं करते। फिर कैसे राजी करोगे? सिर्फ अपने बराण का भाव समर्पण करो इससे अन्य भेंट नहीं है। परोपकार यही है इसको सन्त ही करते हैं इतना सब प्रजा सहित श्रवण कर अपनी मूर्खता पर सब पश्चात्ताप करने लगे और घण्टाकरण से मुक्त हुये। ऐसा इनका हुआ ऐसा ही सब किसी का हो।

चेतनसिंह रूपी राजा जीव है जब अपनी प्रजा रूपी अहंकार इत्यादिकों की बातों में आजाता है तभी बन्दर रूपी पंचभूत मन रूपी चोर के चुराये हुये घण्टे को पकड़ बन्दर रूपी पंच भूतों द्वारा घण्टाकरण रूपी भूत प्रपंच सत्य भासने लगता है। राजा रूपी जीव जब तक स्याने आदि की सहायता यानी कामना युक्त कर्म उपासना करता रहता है तभी तक घण्टाकरण रूपी भूत यानी प्रपंच का जोर और बढ़ता ही जाता है दैववशात जब इसको बोध होता है कि औरों का सहारा छोड़ो तब स्वयं तैयार हुआ तभी सद्गुरुरूपी महात्मा प्राप्त हुये तब महात्मा द्वारा समता रूपी ज्ञान प्राप्त हुआ विषमता रूपी भूत चला गया चला। कहां? गया था ही नहीं। भ्रान्ति से कल्पित था कल्पना अधिष्ठान से रहित ठहर नहीं सकी। अधिष्ठान के ज्ञान बिना भ्रांति दूर होती नहीं। जैसे रज्जु अधिष्ठान के ज्ञान बिना सर्प की भ्रांति दूर नहीं होती। इसमें कोई शंका करे सर्प की भ्रांति फिर से हो जाती है इसका समाधान यह है:-निवृत्ति दो प्रकार की है एक अत्यन्त निवृत्ति होवे है और दूसरी कारण में लय। सो भी निवृत्ति कहिये है कारण सहित कार्य की निवृत्ति अत्यन्त निवृत्ति कहिये है और कल्पित वस्तु की निवृत्ति कारण में लय होवे। जैसे सुषुप्ति में सर्व का लय होवे है सो लय रूप निवृत्ति का तो संयोग पाकर फिर से भ्रांति होती है ऐसी निवृत्ति तो अधिष्ठान के ज्ञान बिना भी होती है क्यों कि सुषुप्ति में प्रपंच का लय हो जाता है। सबके अनुभव सिद्ध है और सुबह उठते ही फिर वही व्यवहार करने लगते हैं व्यवहार के माने भी प्रतीती के यानी आपातरमणीय सिर्फ देखने मात्र के हैं ऐसा निश्चय का दृढ होना ही समता है। इस समता के आते ही प्रपंच रूपी भूत लोप हो जाता है। स्वरूप अज्ञान से प्रपंच भासता है और यही स्वरूप ज्ञान से शांत हो जाता है यानी ब्रह्म रूप हो जाता है। जगत ही ईश्वर का स्वरूप है। इस प्रकार हे शिष्य! तू भी समता का दृढ निश्चय करके प्राप्त हो निश्चय का नाम ही ज्ञान है ऐसे ज्ञान द्वारा प्रपंच से मुक्त होये भी अनहुये घण्टाकरण भूत की न्याई है। न कोई किसी का मित्र है न शत्रु है सर्व अपनी कल्पना का है। विषमता रूपी कल्पना त्याग समता रूपी सत्य ज्ञान की शरण ले, रागद्वेषादि को जार, अपने समस्वरूप में स्थित हो, सुख चैन से जीवन मुक्ति का विलक्षण आनन्द भोग

अमर पद को प्राप्त हो।

ज्ञान—समझ गया ज्ञान गया मान गया प्रसन्न मुख हो श्री गुरु महाराज की आज्ञा पा आत्मानन्द नित्यानन्द में अत्यानन्द में मग्न हुआ साम्राज्य को प्राप्त हुआ अब भी आनन्द पुर में रहता है जो देखना चाहे देख सकते हैं। जीवन मुक्त के विलक्षण सुख का वासी है। अहो आनन्द अ नन्द अति आनन्द सर्वत्र एक वासुदेव ही वासुदेव व्याप्त है अहं सर्वत्र एक आनन्द ही आनन्द परिपूर्ण है।

कहाँ काम, कहां क्रोध, कहाँ लोभ, कहां मोह, कहां मद, कहाँ मत्सरता, कहां मान, कहाँ क्षोभ, कहाँ माया, कहाँ जाया, कहाँ मन, कहाँ बुद्धि, कहां इन्द्रियां, सर्वत्र एक सच्चिदानन्द ही सच्चिदानन्द व्याप्त हैं। अहो अहो सर्वत्र एक सत्य रूप चेतन रूप आनन्द रूप घनरूप पूर्ण रूप न न स्वरूप कूटस्थ अक्षर अव्यक्त अचिन्त्य सनातन पर ब्रह्म परम अक्षर परिपूर्ण अनिर्देश्य नित्य सर्वगम अचल ध्रुव अक्षोभ्य मायातीत गुणातीत कालातीत अग्राह्य अक्रय अवांगमनसगोचर अनीह विभु विरज निरीह अविनाशी प्रकृतिपार घट घट वासी अन्तरयामी सूत्रात्मा आनन्द परमानन्द महानन्द शेषानन्द आनन्द ही आनन्द आनन्द ही आनन्द परिपूर्ण है आनन्द से भिन्न कुछ भी नहीं है।

वाह वाह इस नगरी में बोलने का नाता कौन पिता कौन माता

ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः

किस ओर

(रचयिता श्री मदन गोपाल जी सिंहल)

लिये जाता नाविक किस ओर ॥

चारों दिशि दिखलाई पड़ती भीषण जलधि तरङ्ग।
डर पाते हैं दृष्टि गत हो मुझे विहंग कुरंग ॥
करें जल जीव जन्तु रव घोर ॥

टूटी नय्या डगमग डोले उलटा चाहे समीर।
अन्धकार निशि का दीखे छूटी जाती धीर ॥
दिखाई देता ओर न छोर ॥

नभ में गर्जन तर्जन करते आते हैं घनश्याम।
कड़क रही है कड़ कड़ चपला दीख परे विधिवाम ॥
मचा है नीचे ऊपर शोर ॥

नष्ट हुवा हा पलक मारते जीवन का उद्देश।
प्यारे प्रियतम से मिलने की आशा रही न शेष ॥
व्यर्थ इस समय लगाना ज़ोर ॥

वहिरंग साधन

[ले० श्री महात्मा राम]

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, यह चारों अंग योगाभ्यासी योगी के लिये वहिरंग साधन रूप बतलाये हैं। यम पांच प्रकार का है।

सूत्र—'अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः'।

शरीर मन वाणी से किसी को पीड़ा न पहुचाना अहिंसा है। और जो सचाई मन में है वही वाणी में हो जैसा देखा सुना वा अनुमान किया है वही कहना इसको सत्य कहते हैं।

दूसरे की वस्तु को मिट्टी के समान जान

कर न उठावे और न उठाने की इच्छा करे इसको स्तेय कहते हैं।

पूरा जितेन्द्रिय हो काम की वासना को न उठने दे वह ब्रह्मचर्य है।

शरीर यात्रा से अधिक पदार्थों का संग्रह नहीं करना अपरिग्रह है।

इन पाँच यमों का सर्वकाल में तथा सर्व स्थानों में सर्व प्रकार से पालन करना अत्यन्त कठिन है इसलिये सर्वथा दृढ़ होकर यमों को धारण करना महाव्रत नाम से कथन किया है।

'जाति देशकाल समया नवच्छिन्ना सार्वभौमामहाव्रतम्'।

जैसे किसी जीव के मारने को तो हिंसा मान लिया जाय और किसी को मारने में हिंसा न मानें ऐसा नहीं किन्तु सर्व जाती के जीवों को न मारे और तीर्थों में पाप कर्म नहीं करना किन्तु देशों में तथा सर्व काल में उपरोक्त यमों का श्रद्धा पूर्वक पालन करना महाव्रत नाम से कहा जाता है।

सूत्र–'शौच संतोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः'।

(शौच) बाह्याभ्यान्तर भेद से दो प्रकार का है जल मृत्तिकादिकों से बाह्य शरीर की शुद्धि रखना बाह्य शौच है। और मैत्री मुदिता आदि शुभ भावनाओं से अन्तर मन की शुद्धि रखना अन्तर शौच है। सन्तोष-दैव इच्छा से स्वभाविक प्राप्त हुई वस्तु में संतुष्ट रहना संतोष है।

तप–भूख, प्यास, शर्दी, गर्मी आदि द्वन्द्वों का सहन कर लेना तप है।

स्वाध्याय–अध्यात्म शास्त्रों का पठन पाठन करना तथा ओंकार का जप करना है।

ईश्वर प्रणिधान–मन वाणी और शरीर से होने वाले सर्व कर्मों को ईश्वर में समर्पण करना किसी भी कर्म का फल न चाहना। यह पांच नियम कहे जाते हैं।

यमान् सेवेतसततं न नियमान् केवलान् बुधः।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्॥

मनुजी ने कहा है कि बुद्धिमान् पुरुष यमों का लगातार सेवन करे केवल नियमों का ही न करे यमों को न पालने वाला केवल नियमों का ही सेवन करने वाला गिर जाता है इसलिये यमों को प्रधानता से सेवन करे।

जो पुरुष यमों को श्रद्धा पूर्वक विधी से सेवन करता है उसको निम्नलिखित एक १ यम का न्यारा २ फल होता है।

सूत्रः–'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्यागः'।

जब योगी अहिंसा धर्म में अविचल स्थिति प्राप्त कर लेता है तब उसके पास, आने वाले क्रूर जीव आपस में वैर रखने वाले अपने २ वैर को त्याग देते हैं उनका परस्पर स्नेह हो जाता है।

सूत्रः–'सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।'

जब योगी सत्य धर्म में दृढ़स्थिति को प्राप्त होता है तब उसका वाक्य सत्य होता है। अर्थात् वह जो कह देता है वही सिद्ध हो जाता है उसके वाक्य में वर शाप की शक्ति होती है उसका कोई कर्म निष्फल नहीं जाता है।

सूत्रः–'अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्'।

जब योगी चोरी के त्याग में दृढ़ स्थिति वाला होता है तब सर्व दिशाओं का धन उसके समीप आ उपस्थित होता है।

सूत्रः–'ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः'।

जब ब्रह्मचर्य में दृढ़ स्थिति प्राप्त कर लेता है तब वह शरीर मन और इन्द्रियों में बल को प्राप्त होता है सर्व प्रकार के कर्म करने में तथा सर्व विद्याओं को प्राप्त करने में वह सामर्थ्यवान् होता है उसका बल वीर्य अमोघ होता है।

सूत्रः–'अपरिग्रहस्थैर्ये जन्म कथन्ता संबोधः'।

जब योगी की अपरिग्रहः में दृढ़स्थिति हो जाती है तब उसे अपने बीते हुये जन्म की तथा आगे होने वाले जन्म की खबर हो जाती है कि मैं पहले कौन था और कहाँ था अब मैं यहां किस कारण हुआ हूं इत्यादि सब बातों का पता लग जाता है। अपरिग्रह में भोगों का त्याग किया जाता है भोगों के त्याग के साथ ही देह सम्बन्धी पदार्थों में मोह ममतादिकों का भी त्याग होता है बाह्य पदार्थों के त्याग के पश्चात् अपने देह में भी ममत्व का त्याग होता है ऐसे त्याग रूप अपरिग्रह के परिपक्व होने पर योगी के अन्तःकरण की शुद्ध होकर दिव्य ज्ञान उत्पन्न होता है। यमों के दृढ़ होने के बाद यह सिद्धियां होती हैं।

बाहर शरीर को बारंबार शोधन करने से उसे अपने शरीर में ग्लानि उत्पन्न होती है ग्लानि होने से योगी शरीर के सम्बन्ध से अलग होने की इच्छा करता है। अपने शरीर में वैराग्य होना योगी को कल्याण का साधन है।

सूत्रः–'सत्व शुद्धि सौमनस्यैकाग्र्येन्द्रिय जयात्मदर्शन-योग्यत्वानि च'॥

मन के शुद्ध होने पर मन की प्रसन्नता होती है तदनन्तर मन की एकाग्रता होती है मन के एकाग्र होने पर इन्द्रियों का जय होता है इन्द्रियों के जय पर योगी आत्मा के दर्शन योग्य बन जाता है। यह अन्तर शौच का फल है।

सूत्रः–'सन्तोषादनुत्तम सुख लाभः'।

जब संतोष में पूर्णस्थिरता प्राप्त हो जाती है तब आत्मसुख का लाभ होता है और विषयों में निःरसता होती है।

सूत्रः–'कायेन्द्रिय सिद्धिरशुद्धि क्षयात्तपसः'।

तप के अनुष्ठान से शरीर इन्द्रियों के मल दूर होकर शरीर स्वस्थ निरोग, लघु, और दक्ष (फुर्तीला) होता है और इन्द्रियों में दूर तक देखने की शक्ति हो जाती है।

सूत्रः–'स्वाध्यायादिष्ट देवता संप्रयोगः'।

नित्य प्रति स्वाध्याय करने वाले को इष्ट देवता का साक्षात्कार होता है और देवता, ऋषि, सिद्ध स्वाध्याय शील के दर्शन को जाते हैं और इसके कार्य में सहायता करते हैं।

सूत्रः–'समाधि सिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्'।

जब पुरुष सम्पूर्ण कर्म ईश्वरार्पण बुद्धि से करता है, तब ईश्वर के अनुग्रह से उसके सब विघ्न दूर हो कर जल्दी ही समाधि की सिद्धि होती है।

आसन और प्राणायाम के विषय में १२ वें अंक में कह आये हैं। अब प्रत्याहार कहते हैं।

नेत्रादिक सर्व इन्द्रियों को अपने २ रूपादिक विषयों से निवारण करके जो स्व स्व गोलक में स्थित करना है उसको प्रत्याहार कहते हैं।

'धारणा' किसी भी स्थान में मन के रोकने को धारणा कहते हैं जैसे मूलाधार चक्र, मणिपूरक चक्र २ स्वाधिष्ठान चक्र ३ अनाहतचक्र ४ आज्ञा-चक्र ५ विशुद्धचक्र ६ इन षट् चक्रों में किसी भी चक्र में चित्त के रोकने को धारणा कहते हैं। अथवा सर्वान्तरयामि चैतन्य आत्मा का जो स्मरण है उसे धारणा कहते हैं।

'ध्यान' चैतन्य आत्मा में जो चैतन्याकार सजातीय वृत्तियों का प्रवाह करना है अर्थात् एक ही आकार वाली वृत्तियों का उदय होना ध्यान कहा जाता है।

इसी ध्यान की परिपक्व अवस्था को समाधि कहते हैं।

यह समाधि निर्विकल्प तथा सविकल्प भेद से दो प्रकार की होती है जिस, समाधि में ध्याता,

ध्यान, ध्येय, तीनों विद्यमान होते हैं उसे सविकल्प समाधि कहते हैं और इस त्रिपुटी से रहित समाधि को निर्विकल्प समाधि कहते हैं।

इसी सविकल्प समाधि को संप्रज्ञात समाधि कहते हैं और निर्विकल्प समाधि को असंप्रज्ञात समाधि कहते हैं यहाँ प्रथम समाधि साधन रूप है, और दूसरी समाधि साध्य रूप है। पहली साधन रूप समाधि के अभ्यास काल में विघ्नों की बाहुल्यता होती है अभ्यास करने वाले योगी को बड़ी सावधानी से विघ्नों की निवृत्ति का उपाय सोचना चाहिये।

समाधि अवस्था में होने वाले विघ्न तथा उनकी निवृत्ति का उपाय अगले अंक में कहेंगे।

अपूर्ण

बन्धन-मुक्ति

बन्धन से बढ़कर कोई दुःख नहीं है। बन्धन में रहना कोई नहीं चाहता। मनुष्य पशु पक्षी सभी अपने आपको बन्धन से छुड़ाने की कोशिश में लगे हैं लेकिन इस बन्धन से अब तक कितने छूट पाये हैं सो कहना बड़ा कठिन है। जिसे बन्धन मान कर छूटने का प्रयत्न किया जाता है उसमें सफली भूत प्राणी स्वातंत्र्य में बन्धन मुक्त होते हैं या नहीं इसमें भी संदेह ही है। आज कल अपने से श्रेष्ठ पूज्य व गुरुजनों की हिफाजत संरक्षक या नियन्त्रण से छुट्टी पाकर स्वच्छन्द विचरण करने की स्थिति को ही स्वतन्त्रता माना जाने लगा है। प्रायः सर्वत्र ही इस प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने में अपनी उन्नति का मार्ग खुल गया मानते हैं। किसी प्रकार के नियमों के बन्धन को सहन करना अपने आपको गुलामी में जकड़ना समझने लगा है। वास्तविक बन्धन से छूटने की कोशिस कोई नहीं करता।

बन्धन दो प्रकार के हैं। एक बाह्य और दूसरा आन्तरिक। आज कल जो हो रहा है वह बाह्य बन्धन से छूटने का प्रयत्न है जो एक प्रकार से आन्तरिक बन्धन के दृढ़ करने में सहायक कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। आन्तरिक बन्धन को समझ कर उससे छूटने का उपाय कोई नहीं करना चाहता। बाह्य बंधन आन्तरिक बंधन को तोड़ने का एक साधन है जब तक आन्तरिक बंधन का नाश न हो जाय तब तक बाह्य बंधन का रहना बहुत जरूरी है। आन्तरिक बंधन टूटने पर फिर बाह्य बन्धन रहे या न रहे इसमें कोई हानि नहीं परन्तु आन्तरिक बंधन टूटे बिना बाह्य बंधन को तोड़ना बड़ा भयानक है। आरम्भ में नियमों में से गुजरते हुए उसके पार निकल जाने पर फिर उसके पालन की आवश्यकता नहीं रहती। यदि कोई आरम्भ में ही नियमों का भंग करने लगे तो उससे बड़ी उच्छृङ्खलता और गड़बड़ी फैलती है। जिस प्रकार एक विद्यालय का विद्यार्थी अपने मुख्याध्यापक की आधीनता में रह कर विद्यालय के नियमों का पालन करता हुआ धीरे धीरे स्वयं मुख्याध्यापक के पद पर पहुंच जाता है तब उसे उन नियमों के पालन की आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु यदि वह आरम्भ से ही नियमों के बंधन को सहन न कर मुख्याध्यापक की तरह स्वतन्त्र व्यवहार करेगा तो उसका जो फल होगा सो प्रत्यक्ष है। इसी प्रकार बड़ों के निरीक्षण में रह कर नियमों का पालन करते हुए एक दिन हम भी उनकी तरह स्वतन्त्र व्यवहार करने योग्य हो जायेंगे लेकिन

आज ही अपनी अनुभव विहीन बुद्धि के सहारे अगर हम नियमों को तोड़ने लगेंगे तो उसका परिणाम हमारे लिए बड़ा भयंकर होगा जो आज हमें दृष्टि गोचर नहीं हो रहा है।

दूसरे व्यक्ति या नियमों की आधीनता में रहना बाह्य बन्धन है। यह बन्धन यदि श्रेष्ठ व्यक्तियों की आधीनता का न हो तो भी इतना हानिकर नहीं हो सकता जितना अपना आन्तरिक बन्धन है। अर्थात् अमुक वस्तु या अमुक स्थिति के बिना काम नहीं चल सकता इस प्रकार का स्वयं अपने द्वारा निर्मित बंधन या इन्द्रिय गुलामी आन्तरिक बंधन है। अनेक प्रकार के रसों और व्यंजनों से युक्त भोजन सामग्री नहीं तो कण्ठों के नीचे ही न उतर सके एक यह बन्धन है और दूसरा बन्धन यह है कि इस प्रकार का भोजन केवल रसनेंद्रिय की तृप्ति करने के सिवाय शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर आघात पहुंचाने वाला है अतः त्याज्य है उसे कभी ग्रहण न करो। इसमें दूसरे बन्धन में बन्धे रह कर अभ्यास करते करते इस स्थिति तक पहुंच जाने पर कि जो भी वस्तु रसनेन्द्रिय के सामने आवे वही शरीर पोषणार्थ श्रद्धा पूर्वक भोग लगाले फिर यदि कभी षटरस व्यंजन भी प्राप्त हो जाय और इसी धारणा से भोजन कर लिया जाय तो कोई आपत्ति नहीं। इसके सिवाय साधारण भोजन करने वाला व्यक्ति हर प्रकार के भोजन से तृप्ति लाभ कर सकता है एवं अनेक रसों और व्यंजनों से युक्त पदार्थ खाने वाले को यदि किसी समय वे वस्तुएं न प्राप्त हों तो बिचारे की क्या दशा होगी सो वर्णन नहीं हो सकती। इस हालत में दूसरे नियम के बन्धन में रहना उस नियम के बंधन की मुक्ति से कहीं श्रेयस्कर और सुख कर है। इसी प्रकार और वस्तुओं के संबन्ध में भी है। नित्य साबुन इत्र, फुलेल और सुगंधित पाउडर व्यवहार करने वाले बाबू की बनिस्बत ठण्डे जल से साधारण स्नान करने वाला कहीं अधिक सुखी रह सकता है। मुलायम, फैंसी, चटक मटक और भड़कीले वस्त्रों को धारण करने वाले की अपेक्षा साधारण मोटे वस्त्र धारण करने वाला उससे कहीं ज्यादा आराम और आसानी से जीवन व्यतीत कर सकता है। इस प्रकार के नियमों के बन्धन में रह कर इन्द्रियों की गुलामी के बन्धन से छूटने का प्रयत्न करना ही वास्तविक बंधन से छूटने का प्रयत्न करना है और इसी की सफलता वास्तविक बन्धन मुक्ति है।

बाहरी गुलामी की अपेक्षा इन्द्रियों की गुलामी बहुत बुरी चीज है। बाहरी गुलामी या आधीनता से मनुष्य निश्छल और प्रेम पूर्ण सेवा द्वारा छुट्टी पा सकता है लेकिन आन्तरिक बन्धन या इन्द्रियों की गुलामी से छुट्टी पाना बड़ा कठिन है। इसकी जितनी प्रेम पूर्ण सेवा की जायगी उतना ही बन्धन और दृढ़ होता चला जायगा। इससे मुक्ति लाभ करने के लिए साहस पूर्वक नियमों के पालन द्वारा इसका सामना करना होगा तब कहीं जाकर इससे छुट्टी मिल सकती है। विषयों से विमुख हुए बिना अर्थात् बिना इन्द्रियों की गुलामी या बंधनसे छुटकारा पाये बिना संसार के जन्म मरण रूपी महान बन्धन से मुक्ति मिलनी बड़ी कठिन है अतः बन्धन-मुक्ति चाहने वालों को इन साधारण बाहरी बन्धनों की परवाह किये बिना आन्तरिक बन्धनों से मुक्ति पाने का प्रयत्न करना चाहिए। यही असली बन्धन मुक्ति है।

प्रेम का अंकुर हृदय में उपजने के लक्षण।

(लेखक भक्तरत्न मथुराप्रसाद रिटायर्ड जज जयपुर)

शान्तिरन्यर्थकालत्वं विरक्तिमान शून्यता ।
आशाबन्धः समुत्कंठा नामगाने सदा रुचिः ॥
आसक्तिस्तद्गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसतिस्थले ।
इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जात प्रेमोङ्कुरे जने ॥

प्रिय पाठक श्रोतृगण ! गत वर्ष के भक्ति अंकों में प्रेमा भक्ति के साधन श्रद्धा-सत्संग आदिक विस्तार पूर्वक आपकी सेवा में निवेदन किये जा चुके हैं अब प्रेम पदार्थ हाथ आजाने के बाद प्रेमी कैसे जाना जाय वे लक्षण ऊपर के श्लोक में वर्णन हुए हैं। सो क्रमशः आपकी सेवा में निवेदन करता हूं। ध्यान से सुनने की कृपा कीजिये।

शान्ति = सब से पहले प्रेमी भक्त को शान्ति पदार्थ का लाभ होता है। लेशमात्र कोई इच्छा मन में नहीं रहती न किसी संसारी वस्तु में राग (प्रीति) न किसी से द्वेष (वैरभाव) बस प्रेमी के अन्तःकरण में शान्ति का समुद्र लहराने लगता है। उसके चित्त को क्षोभ दिलाने वाली संसार की कोई वस्तु नहीं हो सकती। अशान्ति का मुख्य मूल कारण कामना है। भक्त के हृदय रूपी वन में जहां भगवत् प्रेम रूपी बली सिंह गरजने लगता है सारे संसारी कामना रूपी गीदड़ तुरन्त दुम दबाकर भाग जाते हैं और लोभ मोह आदि बनचर ढूंढे नहीं पाते।

प्रेमी महानुभाव यदि अपने शरीर के किसी अंग को शान्ति का बाधक समझलेता है तो उस अवयव को शरीर से पृथक् कर देने में भी संकोच नहीं करता इसमें एक दृष्टांत है। एक महात्मा भगवत् प्रेमी अतिशान्तचित्त जंगल में कुटिया बना कर निवास करते और हरि स्मरण में अहर्निश तत्पर रहते थे। दिन के चतुर्थ भाग में बस्ती में जाकर मधूकरी मांग लाते उसी से क्षुधा की निवृत्ति कर लिया करते थे। एक दिन बस्ती में एक गृहस्थ के स्थान पर पहुंच कर एक सुन्दरी नवयौवना को देखा कि वह इन महात्मा के द्वार पर पहुंचते ही बड़ी फुर्ती से स्थान के अन्दर जाके इन के लिये रोटी ले आई और इनकी झोली में डालदी। यह रोटी लेकर अपने स्थान को चले आये, दूसरे दिन जब भिक्षा को उसी तरफ गये तो देखा कि वही स्त्री पहले से रोटी लिये तैयार खड़ी है और उसने रोटी देते समय अति विनीत भाव से यह शब्द उच्चारण किया "महात्मा जी ! कृपा करके जल्दी पधारा करें आज मैं चार घड़ी से आप की बाट देख रही थी आप की कटीली आंखों ने मुझे घायल कर दिया कल जब से आपके दर्शन पाये मुझे रात भर निद्रा नहीं आई आपकी मोहनी मूरत ने मुझे बेचैन कर दिया है" महात्मा उसके यह वचन सुन कर जल्दी से चल दिये आगे जाकर वह रोटी एक कुत्ते के आगे डाल के दूसरे मकान से भिक्षा ले अपनी कुटिया पर जा पहुंचे परन्तु इनके चित्त में बड़ी भारी चिन्ता छागई। शान्ति में बाधा देख विचार किया कि मेरे नेत्रों ने एक प्राणी को कष्ट पहुंचाया यह नेत्र अब शरीर में रखने योग्य नहीं। ऐसा सोच कर आपने एक तीक्ष्ण धार का चाकू लेकर अपने हाथ से दोनों नेत्र निकाल लिये और धोकर उन्हें एक कपड़े में बान्ध लिया। पाठक भाइयो ! जिसकी सच्ची लगन

परमात्मा में लग जाती है उसे इस हाड़ मास के पुतले (शरीर) में किञ्चिन्मात्र भी मोह नहीं रहता वे तो उस परम सुन्दर मनोहर अपने प्रेम पात्र के ध्यान में लीन होकर परम आनन्द में मग्न रहते हैं शरीर में कदापि प्रेम नहीं रखते। और मन जब प्यारे में लग चुका तो इस मल मूत्र के भंडार मलिन शरीर को कठिन से कठिन वेदना पहुंचने पर भी उन्हें कष्ट प्रतीत नहीं होता।

दूसरे दिन महात्मा वस्त्र में बन्धे हुए अपने नेत्रों को लेकर लाठी टेकते टेकते उसी स्थान पर जा पहुंचे। परन्तु वह सुन्दरी स्त्री इन्हें न पहिचान सकी। वो तो भोजन सामग्री लिये हुए बहुत देर से किसी कटीले नयन वाली मोहनी मूरत की प्रतीक्षा कर रही थी। जब यह बहुत निकट आगये तो उसने गौर से इन की तरफ दृष्टि जमा कर देखने से कुछ कुछ पहचाना। और अति विस्मय युक्त वाणी उच्चारण की, हैं यह क्या हुआ! महात्माने झट ही अपने निकाले हुए नेत्र उसे देकर कहा—ले माई! यह तेरे दुखदाई नेत्र इन को जो चाहे सो दण्ड दे।

स्त्री (घबरा कर) हैं महाराज! यह आपने क्या कर लिया, मैं समझी नहीं।

महात्मा—देखो माई कल तुमने बहुत काल तक मेरी प्रतीक्षा करने में कष्ट पाया था और कहा था कि आपकी कटीली आंखों ने मुझे घायल कर दिया। रात भर बेचैन रखा। इसी कारण अवश्य यह दण्डनीय हैं।

स्त्री—महाराज मेरा आशय ऐसा कब था कि आंखें शरीर से निकाल ली जाँय! अब तो आपने सारी उमर कष्ट पाने का काम अपने हाथों से कर लिया। मैं ऐसा कब चाहती थी। यदि आप नेत्रों को शरीर से धारे हुए मेरी इच्छा पूरी कर देते तो आप की क्या हानि थी।

महात्मा—मैया! हमारे लिये तो जगत् की सारी नारी मात्र माता की समान हैं तू हम से अनुचित व्यवहार की इच्छा रखती थी जो हमारी शान्ति की बाधक थी। ऐसी स्थिति में तेरी दुर्भावना का कारण हमारे नेत्र ही सिद्ध हुए जन पर मोहित होकर तूने ऐसी चेष्टा की। इस कारण से हमने नेत्रों को शरीर में रखना अनुचित समझ कर यह कृत्य किया अब तेरी इच्छा हो इन नेत्रों को वैसा ही दण्ड दे। इन्हीने तो तुझे घायल कर डाला था।

स्त्री—तो महाराज! मुझ से बड़ा अपराध हो गया अब मैं क्या उपाय करूं जिससे मेरा यह पाप निवृत्त हो। आप ही कृपा करके उपाय बतलाइये मैं आपकी शरण हूं (यह कह कर स्त्री ने महात्मा के चरणों में गिर कर रोना आरंभ किया)

महात्मा—(दया करके) अच्छा तू अपना पूर्व वृत्तान्त सुना पीछे हम कुछ कहेंगे।

स्त्री—भगवन्। मैं एक बड़े सेठ की पुत्री हूं यहां ब्याही आई उस समय मैं १३ वर्ष की थी। दैव का ऐसा कोप हुआ कि एक वर्ष के बाद ही मेरा पति मर गया। ३ वर्ष तक मैं अपने ससुर और सास के पास रह कर विधवा धर्म का पालन करती रही। ब्रह्मचर्य में रह कर भगवत् भजन करती और कथा वार्ता सुन कर बहुत शान्ति से जीवन व्यतीत करती रही। मेरे मन में संसार के किसी भोग विलास की इच्छा लेशमात्र न थी। मेरे सुसर के कोई सन्तान न थी, मुझे पुत्री के समान रखते और सत् धर्म उपदेश करते थे। पड़ोस में आर्य समाज का स्थान था। एक दिन वहां अपनी सास के साथ चली गई और एक व्याख्याता महाशय

विधवा विवाह पर लेक्चर दे रहे थे। उन्होंने कहा कि विधवा विवाह शास्त्र में लिखा है और जैसे पुरुष को कई स्त्रियों से विवाह करने का हक है स्त्री को भी अधिकार है। इसमें कोई दोष नहीं बाल्य अवस्था में जो विधवा हो जाय उसे सारी उमर कष्ट में काटना वृथा है और उन्होंने कई उदाहरण दिये कि बड़े २ घरानों में श्रेष्ठ कुल की विधवा कन्याओं के पुनर्विवाह हो चुके हैं उनको जाति वालों ने कलंकित नहीं किया। उस दिन से न जाने क्या हो गया मेरा चित्त भजन स्मरण में नहीं लगता और रात्रि को निद्रा नहीं आती। ससुर मेरा विदेश गया है। मेरे चित्त में अशान्ति उत्पन्न हो गई। अभी १ मास ही हुआ है। अब मेरे लिये क्या कर्त्तव्य है सो आप कृपा करके उपदेश करें मेरा अपराध क्षमा करके मुझे अपनी पुत्री समझें मैं आपको गुरु और पिता मानती हूं।

महात्मा–अच्छा पुत्री! सुन पूर्व जन्म के घोर पाप का फल वैधव्य है। जो स्त्री विधवा हो जाने पर ब्रह्मचर्य में रह कर ईश्वर आराधन तथा गुरुजन सेवा में आयु व्यतीत करती, विषय भोगों से विरक्त रहती है ऐसी वैधव्य धर्म परायण देवी इस लोक और परलोक दोनों में प्रतिष्ठा और सुख पाती है। वह पूर्व जन्म के पापों का फल भोग कर शुद्ध हो जाती और उत्तम गति प्राप्त कर लेती है। और इसके विरुद्ध आचरण से सूकरी कूकरी की योनि में जाकर विष्टा खाती है और चौरासी के चक्कर में अनेक जन्म महा कष्ट पाती है। विषय सुख वास्तव में सुख ही दुःख परिणामी है और क्षणिक होने से बुद्धिमान प्राणी कभी उसमें चित्त नहीं लगाते। कर्माबाई और मीरां आदि स्त्रियों के चरित्र सुनने से तुझे भली प्रकार शान्ति मिलेगी। हमारा कहा माने तो इस मार्ग में चलने से तेरा कल्याण होगा।

स्त्री–(हाथ जोड़ कर) गुरु महाराज! मैं ने भक्तमाल पढ़ी है और यह दोनों चरित्र सुने हैं। पहले मेरी बुद्धि ऐसी ही थी केवल उस पुरुष के लेक्चर ने मेरे चित्त में क्षोभ उत्पन्न कर दिया था सो आपकी कृपा से निवृत्त हुआ। अब मैं ब्रह्मचर्य में रह कर भगवत् आराधन करूंगी और आपको धर्म का पिता और गुरु समझ कर कभी आपकी आज्ञा को उल्लंघन नहीं करूंगी। परन्तु मेरे कारण से आपको नेत्रहीन होने का महा कष्ट हुआ इस का ताप मेरे चित्त को जलावेगा इसका क्या उपाय?

महात्मा–पुत्री! इसका किञ्चिन्मात्र भी सोच न कर इस शरीर के प्रारब्ध कर्म का फल शरीर को भोगना ही पड़ेगा अब हमको गुरु कृपा से परिपूर्ण शान्ति प्राप्त है उसमें शरीर के कष्ट से कोई बाधा न होगी प्रत्युत लाभ होगा। नेत्रों के रहने से शान्ति में बाधा की संभावना थी वह मिटगई।

ऐसा कथन कर महात्मा विदा हो गये।

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

प्रिय पाठक वृन्द! श्रद्धा से लेकर प्रेम तक व्याख्या सतांकों में होने के बाद, प्रेम प्रादुर्भाव के अनन्तर जो दशा प्रेमी मनुष्य की होती है उसमें सब से पहले शान्ति कही गई है जिसका स्वरूप इस लेख में दिखाया गया आगे अन्यथ कालत्व इत्यादि लक्षणों का निरूपण क्रम से आगे चलेगा। यदि यह जर्जर शरीर सेवा के योग्य कुछ दिनों रहा तो सेवा में उपस्थित रहेगा ही। अन्यथा जो इच्छा शरणागत वत्सल भगवान् की।

सुदामा-कृष्ण

[श्री गंगाविष्णु पाण्डेय, विद्याभूषण "विष्णु"]

पांव हैं उघारे द्वारे ठाढो एक भिक्षुक है,
नाम है सुदामा औ फटे हैं वस्त्र तन के।
पास में न लोटा थाली सोटा एक हाथ में है,
पोटरी लिए फसो है कंर में दिनन के।
पौर पै अड़ो खड़ो है जात ना गरे पड़ो है,
भीख को, चहूंधा दीठि डारत धरन के।
रावरो ही नाम ले ले पूछत है बार बार,
"विष्णु" दर्श चाहत है दारिद-हरन के।

(२)

जानि के सुदामा सीघ्र धाये घनश्यामा अंक-,
लाइके ललाया भेटयो पेखत नरन के।
आव पूर्ण कामा बोले मित्र से सुनामा भले,
आये हो सुदामा भाग्य जागे हैं सबन के।
भीतर ले आये निज हाथ हनवाये अरु,
व्यंजन खवाये लाय विविध बरन के।
सेज पै सोवाय विष्णु सूं लैके कांटे आप,
धीरे धीरे काढ़त सुदामा के चरन के।

(३)

गुरु गृह में तो हम दोनों साथ रहे किन्तु,
छूट हुई बाद आज बहुत दिनन के।
भौजी की पठाई वस्तु लाये हो अवश्य कछु,
देत हो नहीं पै तुम मोर धरमन के।
ऐसो कहि "विष्णु" लैवि पोटर चबान लागे,
भरि भरि मूठा चाह चावर कनन के।
रानी पटरानी सकुचानी खिसियानी सब,
देखती चरित्र ठाढी तारन तरन के।

भक्ति और उपासना

[ले० श्री बा० पुरुषोत्तमलाल जी त्रिपाठी]

सामान्य मनुष्यों की बहुधा यह धारणा होती है, कि भक्ति और उपासना एक ही वस्तु है। कर्म उपासना और ज्ञान ये तीन साधन श्रुति के तीन कांडों में प्रतिपादित हैं, उनमें उपासना को ही भक्ति भी कहा जाता है। भक्ति नाम का कोई चतुर्थ साधन नहीं, न उसका प्रतिपादक श्रुति का कोई चतुर्थ कांड ही है, सुतराम् उपासना कांड ही भक्ति का प्रतिपादक है, और उपासना भक्ति है। यद्यपि शब्दार्थ में कुछ भेद सा प्रतीत होता है। अपने से उत्कृष्ट में प्रेम करने का नाम भक्ति है, और चित्त वृत्ति की एकाग्रता संपादित करना उपासना कहलाती है। तथापि बिना प्रेम के चित्तवृत्ति की एकाग्रता हो नहीं सकती। स्वभावतः मनुष्य जिसके साथ प्रेम करते हैं, उस ही में उनका मन लगता है, अतः चित्त वृत्ति को एकाग्र करने में ही प्रेम का उपयोग है। ज्यों भक्ति अथवा प्रेम उपासना का ही एक अंग सिद्ध होता है। उपासना से सर्वथा पृथक भाव उसका सिद्ध नहीं होता। और वास्तविक विचार से तो केवल प्रेम भक्ति शब्द का अर्थ भी नहीं, "भजनं भक्तिः" व्युत्पत्ति के अनुसार सेवा का नाम भक्ति है। भज धातु का अर्थ सेवा ही महर्षिपाणिनी ने बताया है। 'भज सेवायाम्' अतः यदि प्रसिद्धि के अनुरोध से उत्कृष्ट विषयक प्रेम को भक्ति शब्दार्थ के गर्भ में प्रविष्ट भी किया जाय, तो भी धात्वर्थ का परित्याग अनुचित होने के कारण प्रेम पूर्वक सेवा का ही नाम भक्ति सिद्ध होगा, केवल प्रेम नहीं। और चित्त वृत्ति की एकाग्रता पूर्वक सेवा ही का नाम उपासना भी प्रसिद्ध है। बस दोनों में कोई विभेद सिद्ध नहीं होता, भक्ति

के जो जो अंग ऋषि, मुनि, पर्व, आचार्यों ने बताये हैं वे ये हैं।

'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥' भी०म०भा

अर्थात् विष्णु भगवान् के नाम गुण आदि का तात्पर्य निर्णय पूर्वक, श्रवण करना, कीर्तन करना स्वरूप गुण आदि का स्मरण करना, भगवान की चरण सेवा, चन्दन आदि से पूजा, प्रणाम अपने में दास भाव की बुद्धि अर्थात् अपने देह का समर्पण कर देना। तात्पर्य यह कि जैसे वैसे मथवा दान कर दिये हुये गौ-अश्व-आदि के भरण पोषण की चिन्ता नहीं रहती, इसी प्रकार अपने देह को भगवच्चरण में समर्पित समझ सब प्रकार की चिन्ता से मुक्त हो जाना ये नवधा-भक्ति कही जाती है। इन सब ही अंगों को उपासना भी कहते हैं। श्रवण, कीर्तन, पादसेवन, अर्चन आदि करने वाले ही उपासक कहाते हैं। जब अंगों में सर्वथा समानता है, तब प्रधान में भेद कैसा? उपनिषदों में भी 'तं यथा यथोपासते' इत्यादि वाक्यों में 'उपासते' शब्द ही विशेषतः व्यवहृत हुआ है। भक्ति शब्द का पृथक् व्यवहार नहीं देखा जाता। सुतराम् उपासना और भक्ति में कोई भेद नहीं। कई एक ग्रन्थकारों और आचार्यों की भी यही धारणा है। किन्तु शुद्ध द्वैत संप्रदाय के आचार्य इन विचारों का अनुमोदन नहीं करते। उन महानुभावों की दृष्टि में उपासना को ही भक्ति समझ लेना बहुत बड़ी भ्रान्ति है, और इस भ्रान्ति के निवारण के लिये उन्होंने बहुत प्रयत्न किया है। भक्ति का यथार्थ स्वरूप ज्ञान कराने वाले प्रथम आचार्य महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य हैं:-

"अयन्ति पितृ पादा उच्चरणवोयत्प्रसादतः।
भक्ति प्राप्तातदन्याश्रमोहा भावश्च पतिभिः॥

वस्तु-वक्तव्य यह है कि शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के सिद्धान्त में भक्ति और उपासना भिन्न भिन्न वस्तु हैं। उपासना में विधि वाक्य द्वारा प्रवृत्ति होती है उपासना में सब की प्रवृत्ति हो सकती है। भक्ति के अधिकारी ईश्वरानुग्रहीत विरले ही पुरुष होते हैं। उपासना का फल कहीं मोक्ष है, कहीं चित्त शुद्धि द्वारा तत्पदज्ञान है, कहीं देवता स्वरूप प्राप्ति है, और कहीं भक्ति सिद्धि है। किन्तु भक्ति स्वयं फल स्वरूप है या पुरुषोत्तम प्राप्ति इस का फल है। उपासना के द्वारा भगवान् की विभूति रूप इतर देवता या विष्णु आदि स्वरूपों की आराधना होती है, किन्तु भक्ति के द्वारा स्वयं पुरुषोत्तम आराध्य हैं। ये ही सब भक्ति को उपासना से पृथक् मानने के मुख्य हेतु हैं।

श्रवण, कीर्तन, पाद सेवा, अर्चन आदि क्रिया जिनको कि सेवा कहते हैं। वे यद्यपि उपासना और भक्ति दोनों में ही की जाती हैं, और इसी आधार पर 'भज सेवायाम्' इत्यादि धात्वर्थ की भी संगति की जाती है, किन्तु अंग की समानता मात्र से उपासना और भक्ति एक हो नहीं सकती। क्योंकि प्रधान स्वरूप भिन्न रहने पर भी अंगों की समानता अभेद नहीं करा सकती। भक्ति शब्द का स्वारसिक और सुप्रसिद्ध मुख्य अर्थ प्रेम ही है। जैसे पुत्र आदि पर प्रेम 'वात्सल्य' कहा जाता है, स्त्री पुरुषों का परस्पर प्रेम 'प्रीति' या 'प्रणय' कहाता है, इस ही प्रकार उत्कृष्ट पर प्रेम 'भक्ति' या 'श्रद्धा' कहा कर लोक में प्रसिद्ध होता है। प्राकृत भक्ति शास्त्र में तो इतना विशेष है, गुरु, पिता देवता, राजा आदि का प्रेम भी 'भक्ति' ही है, भक्ति शब्द तो आनन्दमय परम पुरुषोत्तम के निरुपाधिक और निरवधिक प्रेम में ही निरूढ है। इस शब्द की अन्यत्र मुख्य वृत्ति ही नहीं।

भक्ति शास्त्र के आचार्य श्रीशाण्डिल्य महर्षि ऐसा ही लक्षण कहते हैं:-

"सा परानुरक्तिरीश्वरे" अर्थात् ईश्वर विषयक उत्कृष्ट अनुराग का ही नाम भक्ति है। आचार्य महाप्रभु की भी ऐसी ही आज्ञा है।

'महात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः ते हो भक्तिरिति प्रोक्तः'।

अर्थात् जगदाधार जगदीश्वर को महात्मा जान कर उनमें लौकिक सब पदार्थों की अपेक्षा अधिक और सुदृढ़ अविचल जो प्रेम है, वही भक्ति है। अतः पितृ भक्ति, गुरु भक्ति आदि शब्दों में भक्ति पदका प्रयोग औपचारिक ही मानना पड़ेगा, अथवा पिता, गुरु, आदि को ईश्वर विभूति वा ईश्वर-प्रतिनिधि मान कर शब्द प्रयोग न दोष करना पड़ेगा। अस्तु तात्पर्य यह है कि भक्ति शब्द ईश्वर प्रेम में ही निरूढ है। यह अवश्य है कि प्रेम होने पर ईश्वर सेवा भी नियम से होती है। महात्म्य ज्ञान पूर्वक प्रेम हो और सेवा न हो ऐसा हो नहीं सकता, वहां प्रेम ही सेवा का प्रयोजक हो जाता है। प्रेम बलात् सेवा में प्रवृत्त करा लेता है, अतः वह सेवा भी एक प्रकार प्रेम के ही अन्तर्गत है। और मध्य कक्षा में प्रेम से सेवा, और सेवा से अधिकाधिक प्रेम वृद्धि या इन दोनों का परस्पर कार्यकारण भाव भी चलता ही रहता है, अतएव प्रेमार्थक भक्ति शब्द की सेवा परक निरुक्त अनुपपन्न नहीं होती। 'पुष्टि प्रवाह मर्यादा भेद' के टीका कार श्री तैलंग स्वामी महाराज यही लिखते हैं, कि-

"भजनमात्रं न भक्तिः किन्तु प्रियत्व प्रयोजकं भजनम्।"

अर्थात् केवल सेवा भक्ति नहीं है, किन्तु जिस सेवा से भगवान् में प्रीति हो, साधक भगवान् का प्रिय बने वही सेवा भक्ति कही जाती है। अथवा 'भजनपूर्वेषा भक्तिः' ऐसी व्युत्पत्ति मान कर जिसके द्वारा सेवा में प्रवृत्ति होती है, उस प्रेम को ही भक्ति शब्द का मुख्यार्थ कहा जा सकता है, अथवा प्रेम पूर्वक सेवा को भक्ति शब्दार्थ कह कर भावार्थ निर्वाह कर सकते हैं। तात्पर्य यह कि शब्दवेत्ता आचार्यों का यह सिद्धान्त है, कि शब्द की व्युत्पत्ति के प्रकार और होते हैं, और शब्द का मुख्य निरूढ़ अर्थ और ही होता है।

गो शब्द की व्युत्पत्ति चलनार्थक 'गम' धातु से है, किन्तु उसका मुख्य निरूढ़ अर्थ जो वृषभ वा धेनु है वह चलने की अवस्था में या न चलने की अवस्था में सदाही 'गो' कहलाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार 'भक्ति' शब्द का मुख्य निरूढ़ार्थ प्रेम ही है, इसमें कोई संदेह नहीं रहता। लोक व्यवहार और आचार्यों के वाक्य इसके सर्वथा-पोषक हैं, भावार्थ निर्वाह पर्योप्तयोग सब ने कर लिया है।

'भक्ति हंस' की टीका में श्रीपुरुषोत्तम जी महाराज लिखते हैं कि:-

"आचार्यैस्तु भक्तिपदस्य धात्वर्थः सेवा प्रत्ययार्थः प्रेमेति निबन्ध एकमुपपादितं च अतः प्रेम्णा सेवायां भक्ति पद शक्तिः पर्यवस्यति"।

अर्थात् श्रीआचार्य चरणों ने भक्ति पद में धातु का अर्थ सेवा, और प्रत्यय का अर्थ प्रेम कहा है, अतः दोनों का समन्वय करके प्रेम पूर्वक सेवा में भक्तिपद की शक्ति होती है।

'भक्ति हंस' ग्रंथ में श्री विट्ठलेश प्रभु ने भक्ति शब्दार्थ पर बहुत कुछ विचार किया है। आपका निर्णय यह है कि-

"तेन भक्ति पदस्य शक्तिः स्नेह एव श्रवणादिषु तदंतर्भावेन तत्प्रयोज्यो भक्तिः"

अर्थात् भक्ति शब्द का मुख्य अभिधेय

अर्थ तो स्नेह ही है, श्रवण कीर्तन आदि में कार्य कारण भाव मूलक लक्षणा से भक्ति शब्द का प्रयोग होता है। आगे आप इसे स्पष्ट करते हैं कि—

'स्नेह वशेन क्रियमाणस्तेस्नेह मध्यपातिन एव।"

अर्थात् स्नेह के कारण जो श्रवण कीर्तन आदि होते हैं, वे स्नेह के ही अन्तर्गत समझे जाने चाहियें। अतः उनको भक्ति शब्द अर्थ मानने में कोई आपत्ति नहीं। इन लक्षणों के पक्ष में कुछ लोगों को अरुचि है, उनका अभिमत है कि श्रवण कीर्तन आदि भी भक्ति शब्द के मुख्य ही अर्थ माने जाँय, लाक्षणिक अर्थ कह कर उनको गौणता न की जाय, उनके समाधान के लिये श्रीप्रभुचरणों ने आगे लिखा है कि भक्ति शब्द अनेकार्थक है, एक तो 'स्नेह' या 'प्रेम भक्ति शब्द का मुख्य अर्थ है ही, वह तो स्वयंफल स्वरूप है, उसके प्राप्त होने के अनन्तर फिर अन्य कुछ प्राप्त करने की आकांक्षा ही नहीं रहती। ऐसे भक्तों के लिये तो साक्षाद्भगवान् श्रीमुख से आज्ञा करते हैं कि

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य, सारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः" श्री० भ० मा०

अर्थात् मेरे भक्त सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य और एकत्व इन पांच प्रकार की मुक्तियों का भी मेरे देने पर भी ग्रहण नहीं करते। वे मेरी सेवा में अनन्य भाव से निरत रहते हैं:—

१ प्रभु के साथ वैकुण्ठ आदि एक लोक में स्थिति होने का 'सालोक्य' कहते हैं।

२ प्रभु के समान ऐश्वर्य प्राप्त कर लेने को 'सार्ष्टि' कही जाती है।

३ पार्षद आदि रूप से प्रभु के समीप रहने का नाम 'सामीप्य' है।

४ सौन्दर्य आदि में प्रभु के समान रूप प्राप्त कर लेने का नाम 'सारूप्य' है।

५ प्रभु के स्वरूप में प्रविष्ट हो जाना 'एकत्व' है। तात्पर्य यही है—कि जिनको स्नेह रूप परम भक्ति प्राप्त होगई वे उसके अतिरिक्त किसी वस्तु की इच्छा नहीं कर सकते। अतः यह भक्ति तो स्वयं फल स्वरूपा है, किन्तु इसके अतिरिक्त साक्षात पुरुषोत्तम की प्राप्ति के लिये स्नेह से जिन श्रवण कीर्तन आदिका अनुष्ठान किया जाता है। वे भी भक्ति शब्द के मुख्य अर्थ ही हैं, यह दूसरा अर्थ है—कहिं कहिं—

"भक्त्याहमेकया ग्राह्यः" इत्यादि वचनों में भक्ति शब्द से दोनों ही अर्थों का ग्रहण हो जाता है। किन्तु यह सिद्धांत है कि बिना स्नेह के केवल विधि के बल से जिन श्रवण कीर्तन आदि का अनुष्ठान होता है वे भक्ति शब्द के मुख्यार्थ कदापि नहीं, उनमें भक्ति शब्द का प्रयोग यदि कहीं देखा जाय तो वह कार्य्य कारण भावादि मूलक लक्षणा से ही होगा। सब का सारांश यह हुआ कि भक्ति शब्दार्थ में स्नेह की प्रधानता है, भगवत् प्रेम ही भक्ति कहा जा सकता है। अब उपासना शब्द के अर्थ पर थोड़ा सा विचार किया जाय, उप शब्द का अर्थ है समीप, और आसना शब्द का अर्थ है स्थिति समुदाय से हुआ समीप में स्थित होना, निरूढ़ अर्थ है इसका 'उपास्य रूप में चित्तवृत्ति की एकाग्रता, किसी एक रूप को उपास्य मान कर उसमें निरन्तर चित्तवृत्ति को लगाना जिससे कि चित्त स्थिर हो जाए, चित्त की चंचलता मिट जाय, वह उपासना कहाती है, उपनिषद आदि में उपासना शब्द इसी अर्थ में व्यवहृत है। यह भी एक प्रकार धारा वाहिक ज्ञान ही है। अतः ज्ञानार्थक ईड् धातु भी उपासना के अर्थ में उपनिषद में प्रयुक्त हुआ है। 'य उ चैतमेव वेद' इत्यादि। और 'यथा यथोपास्ते तदेव भवति' जैसी उपासना

करता है जैसी चित्तवृत्ति बनाती है वही हो जाता है। इत्यादि से भी यह अभिप्राय निकलता है। इस चित्तवृत्ति की एकाग्रता के अनेक उपाय हैं, जिसमें चित को स्थिर करना हीय उसका श्रवण कीर्तन उसका स्मरण सेवा पूजन आदि पूर्वोक्त नौ अंग उपाय रूप से यहाँ भी आवश्यक होते हैं। और स्नेह करना भी चित्त वृत्ति को स्थिरता का एक उपाय है, इसे ही भक्ति इस विवेक में श्रीपुरुषोत्तम जी महाराज ने उपासना अङ्ग भक्ति लिखा है। इनके अतिरिक्त प्राणायाम, वैराग्य, आदि भी चित्त वृत्ति की एकाग्रता के उपाय हैं। और चित्त वृत्ति की एकाग्रता करने से उपास्य में प्रेम उत्पन्न हो जाना भी संभव है। यों, उपासना और भक्ति का परस्पर अंगांगी भाव, या कार्य कारण भाव किसी किसी स्थान में हो सकता है, किन्तु एक रूपता इनकी कदापि नहीं हो सकती। बहुत बड़ा भेद इनमें यह है कि उपासना कृत्रिम है, और भक्ति स्वाभाविक है, विधि वाक्यों कि पूर्णता से चित को एक किसी विशेष रूप (उपास्य) में केवल प्रवृत्त करना एक प्रकार कि चित्त वृत्ति बनाना वैसी चित्त वृत्ति बनाने के लिये विधि की पूर्णता से ही श्रवण कीर्तन भजन आदि करना उपासना है। और प्रभुचरणारविन्द में स्वतः प्रेम का प्रवाह होना, किसी विधि की कुछ अपेक्षा न कर पूर्ण वश स्वतः अहर्निश रूप से श्रवण कीर्तन आदि में निरन्तर प्रवृत्त रहना भक्ति है।

अतएव कहा जाता है, कि उपासना प्रयास साध्य है। और भक्ति के लिए प्रभु कृपा साध्य है। प्रभु की असाधारण कृपा हो, तब ही चित में वैसा प्रेम का उदय होता है। और कोई इसका उपाय नहीं।

योग-साधन

[लेखक श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती]

२०७ मन को वश में करने के दो साधन हैं। एक तो चित्तवृत्ति निरोध द्वारा योग और दूसरा ब्रह्म विचार द्वारा ज्ञान। किसी को योग अनुकूल है और किसी को ज्ञान। यह बात मनुष्य के स्वभाव रुचि और पूर्वता पर निर्भर है। यह सामग्री पर भी निर्भर है। जिसके पास स्थाई स्थान है, पर्याप्त भोजन सामग्री है और योग साधन के लिए आवश्यक सामग्री है वह योगाभ्यास कर सकता है। जो विरक्त है और भ्रमण में रहता है विचार साधन का अवलम्ब कर सकता है।

२०८ सब से अधिक भाग्यशाली कौन है? वह है जो अहर्निश चिन्तन करता है और भिक्षा पर गुजारा करता है बहुत भाग्यवन्त है।

२०९ साधक! अपने कठिन तप का अभिमान नहीं करना चाहिए। साधक को लगन होनी चाहिए। तप ज्ञान जताने के लिए नहीं होता है। यदि किसी साधु को १० दिन पवनाहार पर गुजारा करने हो जावें तो इसमें क्या बड़ाई है? सांप महीनों हवा पर गुजारा करते हैं। यदि कोई साधक कहे कि मैं १० घण्टे ठण्डे पानी में खड़ा रह सकता हूं तो इसमें क्या आश्चर्य है? मछली सदैव पानी में रहती है। यदि कोई साधु यह कहे कि मैं बारह वर्ष तक गुफा में रहा हूं तो इसमें भी क्या बड़ाई है। जङ्गली जानवर और पक्षी भी क्यों गुफा में रहते हैं।

२१० जो साधु उत्तरकाशी और हिमालय में रहते हैं उनको गरमी में दिल्ली में रहना कठिन हो

जाता है। यह चित्त की साम्यावस्था नहीं है। मनुष्य को सर्दी और गरमी दोनों ही का सहन करना चाहिए। तब ही यह कहा जा सकता है कि उसका चित्त साम्य अवस्था में है।

२११ जो मनुष्य एकान्त में गुफा में निवास करता है और किसी के साथ मिलता जुलता नहीं है उसका चित्त भी साम्यावस्था में नहीं है। निस्सन्देह मनुष्य को अपने चित्त पर इतना अधिकार होना चाहिए कि वह एकान्त में रह सके परन्तु जब वह शहर में भीड़ भाड़ में रहता हो तब भी उसका चित्त उद्विग्न नहीं होना चाहिए।

२१२ मनुष्य का चित्त शुद्ध हो जाने के पश्चात भी जब मनुष्य संसार का व्यवहार करता है तो निम्न पाँच प्रकार की बाधाएं उपस्थित होती हैं।

१ संसार के विषयों के सम्बन्ध में आने से वैराग चित्त से निकल जाता है और उससे गिरावट आती है।

२ संसार का सत्यपना चित्त में प्रवेश कर जाता है।

३ ब्रह्म की याद चित्त से उतर जाती है।

४ विक्षेप के कारण ब्रह्माकार वृत्ति का बहुत समय तक टिकना कठिन हो जाता है।

५ काम करने में द्वैत भाव और त्रिपुटी का होना आवश्यक है इसके बिना कर्म्म बन नहीं सकता।

२१३ वैराग दो प्रकार का है। १ कारण वैराग २ पूर्वक वैराग कारण वैराग दुःख के कारण होता है और पूरवक वैराग विवेक से उत्पन्न होता है। जिसको कारण वैराग हुआ है उसका चित्त उन पदार्थों की इच्छा में रमण करता रहता है कि जिनके न मिलने से उसके चित्त में दुःख उत्पन्न हुआ था और जब उसको वैसा अवसर प्राप्त हो जाता है तो उसकी गिरावट हो जाती है। विषय उसको बहुत हानि पहुंचाते हैं और पहले की अपेक्षा अधिक वेग से उस पर आक्रमण करते हैं। परन्तु जिसको विवेक के कारण वैराग हुआ है और जिसने यह समझ लिया है कि यह संसार मिथ्या और धोखा है उसकी आत्मिक उन्नति खूब होती है और गिरावट की कोई सम्भावना नहीं।

२१४ योगी इस संसार सागर को चित्त वृत्ति निरोध द्वारा पार करता है और ज्ञानी ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा इसके पार जाता है। भक्त नाम के स्मरण और जप से संसार को तरता है। राम या नारायण या इसी तरह भगवान् का कोई नाम हो उसमें बड़ी भारी शक्ति है। इससे अनन्त आनन्द की प्राप्ति होगी। नाम की शक्ति से परमात्मा का साक्षात् दर्शन हो सकता है। नाम जीव को परमात्मा के समक्ष ला सकता है। नाम से जीव और ब्रह्म की एकता प्राप्त हो सकती है। नाम में चुम्बक और विद्युत जैसी आश्चर्य जनक शक्ति विराजमान है। मेरे मित्रो! नाम की शक्ति को अनुभव करो और नाम का उच्चारण व स्मरण करो और माला फेरो।

२१५ सूर्य की उपासना और स्तुति से उत्तम स्वास्थ्य, शक्ति और मनुष्यता की प्राप्ति होती है। स्नान के पश्चात् सूर्य के १२ नामों का नित्य उच्चारण करो।

१. मित्राय नमः ॐ
२. रवये नमः ॐ
३. सूर्याय नमः ॐ
४. भानवे नमः ॐ
५. खगाय नमः ॐ
६. पूषणे नमः ॐ
७. हिरण्यगर्भाय नमः ॐ

८. मरीचाय नमः ॐ
९. सवित्रे नमः ॐ
१०. अर्काय नमः ॐ
११. भास्कराय नमः ॐ
१२. आदित्याय नमः ॐ

उपरोक्त नामों के उच्चारण से आंख की बहुत सी बीमारियां दूर हो जाती हैं।

२१६ बादल की छाया, मूर्ख की मित्रता, यौवन की सुन्दरता और सम्पत्ति चिरकाल रहने वाले पदार्थ हैं।

२१७ शम चित्त की वह शान्त अवस्था है जो वासना त्याग या वासना नाश से प्राप्त हो ती है। जिसका अन्तःकरण इस गुण से पूर्ण है वह बरफ से अधिक शान्त है। चन्द्रमा की शान्ति भी उसकी शान्ति का मुकाबला नहीं कर सकती जिसका मन शम से पूर्ण है। साधारण तौर पर संसारी पुरुषों का चित्त भट्टी की भान्ति सुलगता रहता है। जिसको शम की प्राप्ति है वह इष्ट पदार्थ की प्राप्ति पर फूल नहीं जाता और अनिष्ट के प्राप्त होने पर दुःखी नहीं होता। उसका चित्त सदैव साम्यावस्था में रहता है। उसका कोई शत्रु नहीं होता। महाराजाधिराज का आनन्द शान्तात्मा के आनन्द के मुकाबले में कुछ भी नहीं। शम मोक्ष के चार पहरेदारों में से एक है। शम के होने पर सन्तोष, विचार और सत्संग इन तीनों की प्राप्ति आप ही हो जाती है।

२१९ विचारवान के लिए संसार ही नहीं है संसार तो अज्ञानी और मूढ़ के लिए है। विचारों के समूह के अतिरिक्त संसार क्या है। संसार तो मन का विलास है।

२१८ जब हिरण प्यासा होता है तो रेत में जल का अनुभव करता है जिसको मृगतृष्णा कहते हैं परन्तु उसके पास पहुंचने पर उसे सदैव निराश होना पड़ता है। इसी प्रकार संसारी पुरुष आनन्द की इच्छा से माया के पदार्थों के पीछे फिरते हैं। यह सब धोखा है। सच्चा सुख और अनन्त आनन्द हृदय में विराजमान आत्मा में है।

अविद्या के नाश होने पर ज्ञान के वृक्ष से शान्ति के पुष्प और मोक्ष रूप परमानन्द की प्राप्ति रूप फल मिल सकता है।

२२० मोक्ष साधन में सत्संग सब से मुख्य कारण है। इसके अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है। सत्संग द्वारा चित्त का परिवर्तन हो जाता है और रजोगुण की वृत्तियों में तबदीली आजाती है। सत्संग से पुराने विषय संस्कार निवृत्त हो जाते हैं और चित्त सात्विक संस्कारों से भर जाता है। सत्संग के प्रभाव से आध्यात्मिक, अधिभौतिक और अधिदैविक तीनों प्रकार के तापों का क्षय होकर अन्तःकरण शान्त हो जाता है। यह मोह को समूल नष्ट कर देता है। यदि तुमको सत्संग प्राप्त है तो तुमको किसी तीर्थ में जाने की आवश्यकता नहीं है। सत्संग तीर्थों का भी तीर्थ है। जहां सत्संग है वहीं पवित्र त्रवेणी बहती है।

२२१ तुम्हारा स्थूल शरीर वर्तमान में ही स्थित है। जिस वस्तु का आदि और अन्त नहीं है उसके वर्तमान को मानना भी व्यर्थ है। तुम शुद्ध बुद्धि से ध्यान पूर्वक विचार करो तो तुमको इसका अत्यन्त अभाव मिलेगा।

२२२ स्वप्नावस्था और जाग्रत दोनों एक समान हैं यद्यपि जाग्रत अवधी लम्बी दिखाई देती है।

२२३ तुमही द्रष्टा हो और तुम ही दृश्य हो इसको खूब समझना चाहिए। जब तुमको यह अनुभव हो जावेगा तो तुम्हारे समस्त दुःखों की निवृत्ति हो जावेगी। इस अनुभव के प्राप्त होने पर

तुमको सर्वत्र एकता, समता और आनन्द का भाव होने लगेगा। इसी अवस्था का नाम ज्ञान है।

२२४ आवाज की स्थूल और सूक्ष्म अवस्था होती है। ग्रामोफोन रिकार्ड में आवाज छिपी हुई सूक्ष्म अवस्था में रहती है। इसी प्रकार खुशबू की भी स्थूल और सूक्ष्म अवस्था होती है। कली में यह अपनी सूक्ष्म अवस्था में होती है। जब हम अपने स्थूल शरीर को त्याग देते हैं तो हमारा लिङ्ग शरीर सूक्ष्म अवस्था में रहता है।

२२५ दूसरों पर दोषारोपण मत करो। शान्ति से सहन करो। दूसरों के लिए कष्ट उठाओ। इस से सन्तोष, तितिक्षा और आत्मिक बल की वृद्धि होगी।

२२६ सिद्धियाँ ज्ञानी के रास्ते में रुकावट नहीं होनी चाहिएं। इनसे जिज्ञासु का पतन हो जाता है। यह माया के रूप हैं। यह ज्ञान के मुकाबले में तुच्छ हैं। तुमको इनसे बचना चाहिये। यह स्वप्न की लीला हैं।

२२७ कांजी से एक स्वस्थ नौजवान की भूख शान्त नहीं हो सकती, इसी प्रकार तप और सिद्धियों द्वारा चित्त की एकाग्रता का प्राप्त सम्भव है इन से ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। यह संसार की निवृत्ति के साधन नहीं हैं।

२२८ जिस प्रकार एक अशुद्ध पात्र रेत या खटाई से मलने से साफ और चमकदार हो जाता है उसी प्रकार मंत्र के जप से अन्तःकरण शुद्ध और पवित्र हो जाता है और परमात्मा के निवास करने योग्य बन जाता है।

२२९ परमात्मा का कोई भी नाम ही अमृत तुल्य है। यह शहद से भी अधिक मीठा होता है। परमात्मा के नाम से जीव अमृत्व को प्राप्त हो जाता है यह वेदों का सार है। देवताओं और असुरों ने जब समुद्र को मथा तो उसमें से अमृत निकला था वेदों के मथने से अज्ञानी जीवों के तीन तापों की निवृत्ति के लिए राम शब्द निकला इस अमृत मय राम शब्द का निरन्तर जप करो और इसको इसी भान्ति पी जाओ जैसे प्राचीन समय में वाल्मीक जी ने पीया था।

२३० लिंग शरीर और अन्तवाह शरीर में भेद है। लिंग शरीर १७ तत्वों वाला स्थूल देह है। इसमें ५ कर्मेन्द्रियां, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ प्राण और मन व बुद्धि हैं। अन्तवाह शरीर पवित्र है। यह सत्व से परिपूर्ण है। इसमें रजोगुण और तमोगुण कुछ नहीं होता। यह वासनाओं और संस्कारों से रहित होता है। इसी शरीर द्वारा योगी एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाता है। सरस्वती की कृपा से लीला स्थूल शरीर से निकल कर बाहर आई और अन्तः वाहक शरीर द्वारा ऊपर के लोकों में गमन कर गई। शंकराचार्य, विक्रमादित्य, हस्तामलक, और थिरुमूलर अन्तः वाहक शरीर वाले थे। विशेष पवित्र शरीर द्वारा उन्होंने दूसरे शरीरों में प्रवेश किया।

२३१ जिस प्रकार गौ वन में चरती हुई अपने बछड़े को याद रखती है इसी प्रकार तुमको संसार में अपने सब प्रकार के व्यवहार करते हुए परमात्मा को याद रखना चाहिए। मन को परमात्मा में लगाए रक्खो और हाथों को काम में लगाए रहो। इस प्रकार तुम बन्धन से रहित होकर आवागमन से छूट जाओगे और परमात्मा के अनन्त आनन्द के भागी बनोगे। इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं है।

२३२ जब तुम किसी मूर्ति पर ध्यान लगाओ तो तुम परमात्मा को उस मूर्ति विशेष या प्रतीक में ही सीमाबद्ध न कर दो बल्कि तुम को इस प्रकार ध्यान करना चाहिए कि यह सर्व व्यापक अनन्त,

सर्वज्ञ और पूर्ण है।

२३३ यदि जप करते समय तुमको निद्रा आजाती है तो खड़े हो कर जप करो, मुँह पर ठण्डे जल के छिड़के दो, रात्री को केवल आध सेर दूध या फल पर गुज़ारा करो। अधिक खाने से आलस्य या निद्रा आती है।

२३४ दश या १५ कुम्भक प्राणायाम कर लिया करो, इससे नींद दूर हो जावेगी।

२३५ परमात्मा के सामने २० या ३० साष्टांग प्रणाम करो यह भी आलस्य को दूर करने का एक उपाय है।

२३६ मैं असंग, अकर्ता, साक्षी और त्रिगुणातीत हूँ निरन्तर इसी प्रकार के विचारों में रमण करो। पर यह निर्गुण उपासना है।

२३७ राजसिक जीवन, भोग, भूल, और लूट मार की वृत्ति से भरा हुआ है। इस प्रकृति के मनुष्य दूसरों पर अधिकार जमाना चाहते हैं। रजोगुणी दूसरों को खाना चाहते हैं। यह स्वार्थ से भरे हुए होते हैं।

२३८ जब ज्ञानी बाहर को देखता है तो वह केवल साक्षी मात्र होता है उसकी वृत्ति संसारी पुरुषों की भान्ति विषयाकार नहीं होता।

२३९ तप से पाप नाश हो जाते हैं, इन्द्रियां निर्मल हो जाती हैं, चित्त शुद्ध हो जाता है और एकाग्रता की वृद्धि होती है।

२४० जिस मनुष्य के पाप तपश्चर्या से क्षीण हो गए हैं, जो शान्त और वीत राग है और जो संसार से अत्यन्त निवृत्ति की इच्छा वाला है वही वेदान्त और ज्ञान की पुस्तकों के पढ़ने का अधिकारी है।

श्रुति-सार

केनोपनिषद्

ओं आप्यायन्तु ममांगानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथोबलमिंद्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणमस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्तेमयि सन्तु ते मयि संतु।

मेरे कर चरणादि अङ्ग ब्रह्म ध्यान अनुकूलता से वृद्धि को प्राप्त होवें। ब्रह्म है या नहीं ऐसा निरादर मैं नहीं करूं। ऐसे ही वह मेरा निराकरण नहीं करे। हम परस्पर प्रीति से चलें। ब्रह्मात्मा में निरन्तर प्रेम करें। मेरे में शमादिक होवें। उपनिषदों में जो धर्म प्रकाशित हुये हैं वह सब मेरे में बसें।

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः। केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति॥ १

किस करके प्रेरित हुआ मन जाता है। किस करके प्राण प्रथम प्रैति युक्त होते हैं। किस से प्रेषित इस वाणि को बोलते हैं। चक्षु, श्रोत्र को कौन देव नियुक्त करता है॥ १॥

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः। चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति

जो श्रोत्र का श्रोत्र है, मन का मन, वाणि का

वाणि प्राण का प्राण, चक्षु का चक्षु है उस को बन्धन से पृथक् जान कर धीर पुरुष इस लोक से मर कर अमर होते हैं ॥ २ ॥

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे ॥ ३ ॥

उस में चक्षु नहीं जा सकते, वाणि नहीं पहुंचती, न मन ही पहुंच सकता है। न ही जानते और नहीं किसी प्रकार जान सकते हैं। जिस से शिष्यादि को उपदेश किया जाये। वह ज्ञात वस्तु से और परे है और अज्ञात वस्तु से ऊपर है इस प्रकार पूर्वाचार्यों के वचन हम सुनते हैं जो हमारे प्रति उस का व्याख्यान कर गये हैं ॥ ३ ॥

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥

जो वाणि से प्रकाशित नहीं होता जिस से वाणि प्रकाशित होती है। उस को ही ब्रह्म जान। जो इस वाणि से शब्दादि का सेवन करते हैं यह वह नहीं है ॥ ४ ॥

इति प्रथमः खण्डः

अथ द्वितीयः खण्डः

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः। अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्

जिसका कुछ मत नहीं है उसका यह जाना हुआ है। और जिसका मत है वह उस को नहीं जानता यह जानने वालों को अविज्ञात है न जानने वालों को विज्ञात है। मनसा यदभ्युदायते तन्मतम् ॥

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते। आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्

इन्द्रियों से जो विषयों का ज्ञान होता है उसे बोध कहते हैं। और इन्द्रियों को विषयों से रोक कर आत्मा में बुद्धि की वृत्तियों को लगाने से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे प्रतिबोध कहते हैं। उस प्रतिबोध से जाना हुआ जो आत्म-तत्व है उससे निश्चय करके मोक्ष को प्राप्त होता है। आत्मा से बल को प्राप्त होता है, विद्या से मोक्ष पाता है ॥ २

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥

यदि यहां पर जाना गया तो अमृत है और यदि यहां पर नहीं जाना गया तो बड़ी हानि है। धीर लोग चराचर जगत् में विचर कर इस लोक से पृथक् हो कर अमर होते हैं ॥ १३ ॥

इति द्वितीयः खण्डः

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य एतदेवं वेदाभि हैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ॥

वह ब्रह्म योगी जन सेव्य होने से तद्वन कहलाता है वह इस प्रकार उपासनीय है। सो जो मनुष्य इस ब्रह्म को इस प्रकार जानता है उसकी सब प्राणि चाहना करते हैं ॥ ३१ ॥

इति चतुर्थः खण्डः ।

कठोपनिषद्

प्रथमा वल्ली

ओं सह नाववतु सहनौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ।

सुना जाता है वाजश्रवा के पुत्र ने फल की कामना करते हुये सर्वस्व को दान किया । उसका नचिकेता नाम वाला पुत्र था ॥ १ ॥

तं ह कुमारं संतं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽविवेश सोऽमन्यत ॥

बालक होने पर भी उसको दान किये हुये पदार्थों के यथायोग्य विभाग करते समय आस्तिकी बुद्धि प्रविष्ट हुई यह सोचता था ॥ २ ॥

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिंद्रिया । अनन्दा नाम ते लोकास्तान्स गच्छति ता ददत् ॥ ३ ॥

जो गायें जल पी चुकी हैं, तृण भक्षण कर चुकी हैं, दुग्ध जिनका दुहा जा चुका है, उनको जो दान करता है वह आनन्द रहित जो लोक हैं उनको जाता है ॥ ३ ॥

स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति । द्वितीयं तृतीयं तं होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति ॥ ४ ॥

वह पिता से बोला, हे तात ! मुझ को किस के लिये दोगे । दो बार तिबारा उस बालक ने कहा कि मुझे किस के लिये दोगे । तब उसने क्रोध करके कहा कि मौत के लिये तुझ को दूंगा ॥ ४ ॥

बहुनामेमि प्रथमो बहुनामेमि मध्यमः । किंस्विद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाऽद्य करिष्यति

बहुतों में मुख्य समझा जाता हूँ बहुतों में मध्यम माना जाता हूँ । यम का क्या कर्तव्य है जो मुझ से आज करावेगा ॥ ५ ॥

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः ॥ ६ ॥

जैसे पहले लोग मृत्यु को प्राप्त हुये हैं उनको पीछे देख तथा अगले लोगों को जाते हुये आगे देख । प्राणि यवादि के सदृश जीर्ण होकर मरता है । धान्य के सदृश उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान् । तस्यैतां शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम्

हे विवस्वान के पुत्र ! आप के घरों में अग्नि के समान तेज और तप से युक्त अभ्यागत आया हुआ है ऐसे का सत्कार सज्जन लोग प्रसन्नता पूर्वक करते हैं । अतः आप शान्ति के लिये जलादि को प्राप्त करिये ॥ ७ ॥

आशा प्रतीक्षे संगतं सूनृतां चेष्टा पूर्तं पुत्रपशूंश्च सर्वान् । एतदृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे ॥

जिस पुरुष के घर में ब्रह्मचित अतिथि निराहार रहता है उस अल्प बुद्धि के हानि वस्तु की चाहना आशा और अप्राप्त वस्तु की कामना प्रतीक्षा कहलाती है इन दोनों सत्संगति से होने वाले फल,

प्रिय वाणी, उसको निमित्त दया दे (यज्ञादि श्रौत कर्मों के फल को इष्ट, और अनाथ रक्षणादि स्मार्त कर्मों के फल को पूर्त कहते हैं) इन को भी और [illegible] पुत्र पशु न सब का तिरस्कार न किया हुआ [illegible] नाश [illegible] है। अन्यत्र भी कहा है॥

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रति निवर्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति॥

निशो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मेऽनश्नन्ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः। नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्तिमेऽस्तु तस्मात् प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व॥

हे ब्रह्मन्! आप अतिथि हैं अतएव नमस्कार करने के योग्य हैं। आप के लिए नमस्कार हो मेरा कल्याण हो। हे ब्रह्मन्! जो आप मेरे घर में तीन रात्रि अन्न जल के बिना बसे इस कारण प्रति रात्रि एक एक के हिसाब से तीन वरों को अङ्गीकार करें॥ ६॥

भजन

तुम गोपाल मोसों बहुत करी।
नर देही दीनी सुमिरन को,
मो पापी ते कछु न सरी
गर्भवास अति त्रास अधो मुख,
तहां न मेरी सुधि बिसरी।
पाक उदर जठर नहिं दीनें,
कंचन सी मेरी देहधरी।
जग में जन्म पाप बहु कीने,
आदि अन्त लौं सब बिसरी।
सूर पतित तुर पतित उधारन,
अपने विरद की लाज धरी।

२

दीनानाथ अब बार तुम्हारी
पतित उधारन विरद जानि कै बिगरी लेहु सँवारी।
बालापन खेलत ही खायो युवा विषय रस माते॥
बृद्ध भये सुधि प्रगटी मोको दुखित पुकारत ताते।
सुतनि निरखि तिय तरुण भ्रात तनि तन स्वच्छ भई तुम्हारी
श्रवण न सुनत चरण गति थाकी नैन भये जल प्यारी
पलित केश कफ कंठ विरोध्यौ कलप परी दिन राती
माया मोहि न छोड़े तृष्णा ए दोउ दुख दाती॥
अब या व्यथा दूर करबे को और न समरथ कोई।
सूरदास प्रभु करुणा सागर तुमते होई सु होई॥

३

कौन गति करिहौ मेरी नाथ।
हौं तो कुटिल कुचील कुदरशन,
रहत विषय के साथ।
दिन बीतत माया के लालच,
कुल कुटुम्ब के हेत॥
सारी रैन नींद भरी सोवत,
जैसे पशू अचेत।
कागज धरनि करै तुम लेखनि,
जल सागर मसि घोर॥
लिखै गणेश जन्म भर मम कृत,
तऊ दीप नहिं ओर।
गज गणिका अरु विप्र अजामिल,
अगणित अधम उतारे।
अपस चाल अपराध करे मैं,
तिनहु ते अति भारे॥
लिखि २ मम अपराध जन्म के,
चित्र गुप्त अकुलाये।
भृगु ऋषि आदि सुनत चकित भये,
यम मुनि शीश डुलाये॥

परम पुनीत पवित्र कृपानिधि,
पावन नाम कहायो ।
सूर पतित हव सुन्यो बिरद यह,
तब धीरज मन आयो ॥

४

नाथ सकौ तो मैं हि उधारो ॥ टेक ॥
पतितन में बिख्यात पतित हौं पावन नाम तुम्हारो ॥
बड़े पतित पर संगहु नाहीं अजामिल कौन बिचारो ॥
भाजे नरक नाम सुनि मेरो यमनि दियो हठ तारो ॥
क्षुद्र पतित तुम तारि रमापति जिय तुम करो जिनगारो
सूर पतित को ठौर कहूं नहिं है हरि नाम सहारो ॥

५

तुम कब मैं सों पतित उधारयो ।
कै हौं प्रभु बरबस भुलाय तुम बिनु ससकत को तार्यो
गीधव्याध गजगौतम की तिय उनको कहा निहार्यो ।
गणिका तरी आपनी करनी नाम भयो प्रभु थारो ॥
अजामिल तो बिप्र तुम्हारो हुतो पुरातन दास ।
नेक चूकतेही गति कीनी फिर बैकुण्ठ हो बास ॥
पतित जानि तुम सब उतारे हरयो न काहू खेट ।
तौ जानौं जौ मोहि तारि हौं सूर कूर कायठट ॥

६

प्रभु हौं सब पतितन को टीको ॥
और पतित सब दिवस चार के हौं तनमान्तर ही को
बधिक अजामिल गणिका तारी और पूतना ही को ॥
मोहि छांडि तुम और उधारे मिटे शूल क्यों जी को ॥
कोउन समरथ अघ करिबे को खैंच कहत हौं सी को ॥
मरियत लाज सूर पतितन में हमहूंते को नीको ॥

७

हौं तो पतित शिरोमणि माधो ॥
अजामिल बातन ही तार्यो सुन्यो जो मोते आधो ॥
कै प्रभु हार मानि कै बैठहु कै अबधि निस्तारो ॥
सूर पतित को और ठौर नाहिं है हरिनाम सहारो ॥

८

माधो जू और न मोते पापी ॥
छातक कुटिल चवाई कपटी महादुःख सन्तापी ॥
लम्पट धूत पूत दमरी को बिषय जाप को जापी ॥
भक्ष अभक्ष अपेय पान करि बहु नमनसा थापी ॥
कामी विवश कामिनि केरस लोभ लालसा थापं ॥
मन क्रम बचन दुसह सबहिन सों कटुक बचन आलापी
जेतक अधम उधारे तुम प्रभु तिनका गति मैं नापी ॥
सागर सूर भरयो विकरालतल पतित अजामिल पापी ॥

९

हरि हौं सब पतितन को नायक ॥
को करि सकै बराबरि मेरी और कोउ नहिं लायक ॥
जैसो अजामिल को दीने सो पाटी लिखवाऊं ।
तो विश्वास होई मन मेरो औरौं पतित बुलाऊं ॥
यह मारग चौगुनो चलाऊं तौ पूरो व्यापारी ।
बचन मानि जे चली गाँठि दै पाऊं सुख अतिभारी ॥
पतित उधारन नाम सुन्यो जब शरन गहि तकि दौरे ।
अब के तो अपनी ले आयो बेर बहुत की ओर ॥
होड़ा होड़ी मनहि भावते किये पाप भरि भेट ।
सबै पतित पाइन तर डारो हौं हमारो भेंट ॥
बहुत भरोसो जानि तुम्हारो अघ कीनो भरि मांडा ।
लीजे बेगि निबेरो तुहि सूर पतित को डांडो ॥

१०

मोप्रभु जू मोहि कहें की लाज ।
जन्म २ योनी भ्रम्यो अभिमानी बे काज ॥
जल थल जीव जिते जग जीवन निरखत दुखित भये देव
गुण अवगुण को समुझत शंका परी आइ यह टेव ॥
सर्वस खाई गहा पर बैठयो काया न हतु चचारी ।
सूरश्याम के पालन हारे जानत हैं नर नारी ॥